THE BOOK WAS DRENCHED

TEXT FLY WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_180636
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 831 / A 31 A Accession No. G.H. 22

Author अख्तर हुसैन रायपुरी ।

Title आग और आँसू ।

This book should be returned on or before the date last marked below.

आग और आँसू

[कहानी-संग्रह]

आग और आँसू

डाक्टर अख्तरहुसेन रायपुरी डी० लिट० (पेरिस)

विश्ववाणी प्रकाशन, इलाहाबाद

प्रकाशक : विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

मूल्य दो रुपया

मुद्रक : विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, इलाहाबाद

कहानी-क्रम

१.	बचपन	...	...	१
२.	मेरा घर	...	..	५
३.	भिखारी	...	...	१२
४.	मज़दूर	...	...	२६
५.	मरघट	...	...	४१
६.	भविष्य की ओर	...	...	४६
७.	मौत	...	...	६२
८.	प्रारब्ध	...	...	७०
९.	मेरी डायरी के कुछ पृष्ठ	...	...	७७
१०.	मुझे जाने दो	....	...	९०
११.	रूसी कवि की आत्महत्या	....	...	१००
१२.	सिपाही की टाँग	...	...	१०९
१३.	काफ़िरिस्तान की एक रात	...	...	११८
१४.	दिल का अँधेरा	...	...	१२६
१५.	पत्थर की मूर्ति	...	....	१४६

दो शब्द

जब मैंने इन बिखरी हुई कहानियों को किताब का रूप देना चाहा तो अतीत ने पुकार कर कहा :

मेरी भूली हुई आवाज़ कहाँ है लाना,
मेरा टूटा हुआ वह साज़ कहाँ है लाना !

इन में सब से पहली कहानी (मज़दूर) तब लिखी गयी थी जब सन १९३३ में मैं कालिज में पढ़ता था और सब से आख़िरी (पत्थर की मूर्ति) तब जब कालिज में पढ़ाता था (सन् १६४१)। तब और अब में एक युग का अंतर है, और अपने छोटे से जीवन के एक युग में मैंने जीवन को बहुत खंगाला है। पर इस मन्थन में मुझे अमृत का पता न चला और हलाहल से भी ज़्यादा कीचड़ से वास्ता पड़ा।

इन कहानियों में कुछ है या नहीं, मुझे यह मालूम नहीं। मैंने दुनिया में सत् या सुन्दर की आभा बहुत कम देखी है। अगर इन पन्नों में भी उनकी झलक नज़र न आये तो इसे मेरे दिल या निगाह की तंगी का कुसूर न समझा जाये बल्कि उस समाज और उस ज़माने को अपराधी ठहराया जाये जिनकी बुनियाद कपट और कुरूपता पर रखी हुई है।

यह कहानियां यहाँ वहाँ छपती रहीं और अपनी असारता के कारण पुरानी फ़ाइलों के भार-तले दब गयीं। मुझे भी देर तक उन्हें विस्मृति के गढ़े से निकालने का ध्यान न आया। फिर धीरे धीरे मेरे जीवन में ऐसा परिवर्त्तन होगया जैसे इस शरीर में कोई और आदमी रहता हो। अब यह नया आदमी अपने अंदर सोयी हुई लेखक की लाश को आलोचक की नज़र से देखने लगा; कुरेद कुरेद कर उससे अपने किये-धरे का हिसाब माँगने लगा। तो गोया यह किताब उस सवाल का जवाब है जो अपने बीते हुए दिनों से पूछ रहा हूं।

अगर कोई पाठक इस संग्रह में महानता, नैतिकता या ऊँचे आदर्शों और सन्देशों की तलाश करेगा तो निराश होगा। इसमें मामूली लोगों की मामूली बातों के सिवा कुछ नहीं और वह भी मामूली तरीके से बयान की गयी हैं। यह ज़रूर महसूस होता है कि जो कुछ लिखा गया था वह सादगी और सचाई के साथ। यह उन लोगों की दुख-बीती है जिनके लिये जीवन के पास मौत के सिवा कोई सन्देश नहीं; जिनकी शब्दावली में 'आदर्श' या 'नैतिकता' से अधिक निरर्थक शब्द हैं ही नहीं। वह लोग साहित्य के हरिजन हैं, जिनका नाम भी कुछ समय पहिले तक लेखनी की नोक पर न आता था। फिर भी इस पतित और दलित मानवता का हाल लिखते हुए मुझे गर्व होता है। खेद इसका है कि मेरा कलम कमज़ोर है और मेरी ज़बान सुस्त।

शायद कोई पूछ बैठे कि अगर यह कहानियाँ इतनी ही सारहीन, रसहीन और तथ्यहीन थीं तो फिर इन गड़े मुर्दों को पुरानी पत्रिकाओं के कब्रिस्तान से क्यों निकाला गया?

सिर्फ़ इसलिये कि यह कहानियां जिनके बारे में लिखी गयी हैं वह कभी नहीं मरते और न उनकी समस्याएं पुरानी होती हैं। वह समाज के कोल्हू में बंधे हुए निरन्तर चक्कर लगाते रहते हैं। भिखारी मर जाते हैं; पर भीख के ठीकरे अमर हैं और हमारी सभ्यता के अजायबघर में ठीक हमारी नाक के नीचे रखे हुए हैं। मानव जाति का इतिहास स्त्री के पतन और वेश्या वृत्ति से शुरू होता है; और सभ्यता के साथ आतशक और सूज़ाक के कीड़ों की तादाद बढ़ती जाती है। अगर वह सारा लहू जो धर्म, राष्ट्र या देश के नाम पर बहाया गया है, जमा किया जाये तो सारी धरती उसमें डूब जाय।

इस संग्रह में किसी ख़ास नियम या क्रम की पाबन्दी नहीं है। कहानियाँ लगभग सभी मौलिक हैं पर एक आध अनुवादित भी; इनके साथ कुछ स्केच भी नत्थी कर दिये गये हैं। सबब तो सचमुच में यही था कि अगर इन सब को इकट्ठा न किया जाता तो किताब न बनती।

जानता हूँ कि न तो इस संग्रह का कोई बाज़ार-मोल है और न आलोचकों की दृष्टि में इसका कोई महत्व। पर अगर किसी तरह इसकी पहुँच उस बूढ़े मिस्तरी तक हो जाये जो पड़ोसियों का माल चुरा कर अपनी देवी की सेवा किया करता था या उस अन्धे तक जो शून्य आकाश से अपनी मूक वाणी में न जाने क्या क्या पूछता रहता था; और या उस टकैती वेश्या तक जो बेसुरी आवाज़ में—मुझे जाने दो! पाप की नगरी से जाने दो! की बेतुकी तान छेड़ा करती थी, तो मेरा प्रयास सफल हो जायेगा। फिर मुझे परवाह नहीं कि इसे कोई पढ़ता है या नहीं और पढ़ कर क्या कहता है!

—अख़्तरहुसेन रायपुरी

बचपन

जिस बस्ती की मिट्टी मुझमें बसी हुई है, उसका नाम रा···से आरम्भ होता है। बरसों उसके गली-कूचों की ख़ाक मैंने छानी है। उसकी हवा में मेरे हँसने और रोने की आवाज़ सोई हुई है। कुछ साल पहिले तक उसकी हर पगडंडी और हर डगर की तस्वीर मुझे याद थी। उसकी एक-एक ईंट की झलक मुझमें खुबी हुई थी। नगर के क़ब्रिस्तान के सिवा हर जगह मेरी जानी-पहचानी थी। पिछली बार मैं इसे भी देख आया और अब कह सकता हूं कि मैं जीवन और मृत्यु दोनों की बसायी हुई आबादियों से परिचित हूँ।

बस्ती से हटकर एक उदास और घनी झाड़ी है। वहाँ फूल बहुत कम खिलते हैं, और जो खिलते भी हैं वे बेरङ्ग और रसहीन। पेड़ों की डालियँा विषाद के बोझ से झुकी होती हैं और जब पक्षी बोलते हैं तो भान होता है कि वे कराह रहे हैं। शाम होते ही ग़रीब की झोपड़ी के दिये के समान जुगनू झिलमिलाने लगते हैं। शायद ही किसी समाधि पर कोई दिया सिर धुनता हो, वरना आमतौर पर हर मरनेवाले के सिरहाने कोई न कोई नन्हा-सा जुगनू अपने क्षीण से प्रकाश को अँधेरे में यों फैला देता है जैसे जीवन और मरण की सीमा पर अंतिम हिचकी निस्तार का रास्ता ढूँढ़ रही हो।

अभिलाषाओं और आशाओं के इस खंडहर में देर तक मैं उस मिट्टी की ढेरी को ढूंढ़ता रहा जिसके नीचे बड़ीबी[1] हमेशा के लिये

१—घर की बूढ़ी नौकरानी का उपनाम।

सो रही है। जब मैं उसके पास पहुँचा तो अतीत ने पुकार कर कहा कि इसी समाधि में तेरा बचपन देर से सो रहा है।

अँधेरा फैलता जाता था, सन्नाटा बढ़ता जाता था। समाधि कच्ची थी और उसके कोने नीचे धँस गये थे। दो चार जंगली पौधे दरारों से सिर निकालकर तारों को मौन का आदेश कर रहे थे। वहीं दीमकों ने अपना घर बना लिया था और क्या अजब कि बड़ी बी की धूल धूसरित हड्डियों में उन्हें थोड़ा सा खाना मिल गया हो। मेरे जीवन-ग्रंथ के उपसंहार में केवल एक शब्द है--'कल'। यहाँ आकर महसूस हुआ कि 'कल' की सीढ़ी पर चढ़कर मैं 'आज' की दीवार तक पहुँचा ही था कि यह सीढ़ी किसी अंधे कुंए में गिर पड़ी। अब न इस दीवार का कोई ओर-छोर मिलता है और न नीचे उतरने का रास्ता बाक़ी है।

मनुष्य का जीवन एक अधूरी किताब है और बस। इसके कुछ पृष्ठ लिखे जा चुके, कुछ लिखे जायेंगे और फिर कालचक्र 'इतिश्री' लिखकर इस कहानी को इतिहास के विस्मृति-गर्त में फेंक देगा। लेकिन इस शीश महल का हर रंग साफ़ साफ़ नज़र आता है। अगर मेरे क़लम में ताक़त होती तो मैं इससे जीवन का जीता-जागता चित्र बना सकता।

इस पुस्तक का पहिला अध्याय मौत से शुरू होकर मौत पर ही ख़तम होता है। मुझे याद है कि मैं बहुत छोटा था, शायद अपने पैरों पर खड़ा भी न हो सकता था। शीतकाल की सन्ध्या बेला की बात है। बड़ी बी तवे पर रोटी सेंक रही थी, और मैं उसके पास बैठा लालटेन की रोशनी में साबुन के पानी से बुलबुले निकालने की

कोशिश कर रहा था। एकाएक सारा घर क्रन्दन की गूँज से काँप उठा और बड़ी बी अपने हाथों को साड़ी में पोंछ कर बाहर भागी। मेरी समझ में बस इतना आया कि लोग किसी बात पर रो रहे हैं और समवेदना कहती है कि मुझे भी रोना चाहिये। चूल्हे के पास बैठकर मैं भी ज़ोर से चिल्लाने लगा, पर बुलबुलों का खेल इतना मनोरंजक था कि आँखों में आँसू न आये। बाहर इतना अँधेरा था कि अपने आसन से डोलने का साहस न हुआ। रोने-धोने का सिलसिला देर तक जारी रहा, यहां तक कि मेरा कौतूहल बढ़ गया। कुछ देर बाद कई औरतें आयीं और मुझे गोद में उठाकर फूट-फूट कर रोने लगीं। इतना तो मैं भी समझ गया कि अम्मा की बीमारी से इस विलाप का सम्बन्ध है। सम्बन्ध किस प्रकार का है, यह मैं न भाँप सका। सच तो यह है कि इतने लोगों को अपने लाड़-प्यार में तत्पर पाकर मेरा हृदय अभिमान से फूल उठा।

मुझे उस रात की सब बातें याद हैं। लकड़ी के एक सन्दूक में अम्मा का लिटाया जाना, मेरा उनके समीप जाकर कुछ पूछना—फिर मातम का हृदय-विदारक दृश्य। मैं केवल इतना समझा कि अम्मा इलाज के लिये कहीं जा रही हैं, और अब मेरे पालन-पोषण का भार बड़ी बी पर होगा। जहाँ तक याद पड़ता है इस प्रबन्ध पर मुझे कोई दुख नहीं हुआ क्योंकि बड़ी बी का संग मुझे जी जान से पसन्द था।

* * *

मैं जिस क़ब्र के पास बैठा हूँ, उसमें सोने वाली बूढ़ी औरत की तसवीर मेरे मानस-पटल पर सदा सर्वदा अंकित रहेगी। उसकी

धुँधली आँखें शून्य में न जाने किस बिछुड़े हुए को ढूंढ़ा करती थीं। उसकी निश्चल बाहों के सहारे मैंने बचपन का कंटकमय मार्ग तै किया है। उसकी लोरियों और कहानियों ने मेरी कल्पना को रंगीनी दी है।

काल अवस्था की चादर को लिपेटता रहा और फिर वह दिन आया जब बड़ी बी को मर जाना था। अंतिम बार जब मैंने उसे देखा तो वह चलने फिरने के योग्य न रही थी। हाड़-चाम का अनमेल जोग था, जिसमें जीवन डूबती हुई नौका के समान डोल रहा था। नौ जवानी के साथ समाज की विषमताओं को देख देखकर संसार से मुझे जैसी तीव्र घृणा होती जाती थी, मृत्यु से निकट आकर बड़ी बी का संसार-प्रेम वैसा ही बढ़ गया था। अब तक जो सबसे बड़ा पाप मुझ से हुआ है वह यह कि इस खिंचाव के कारण उस समय मैं उसकी उतनी सेवा न कर सका जितनी मुझे करनी चाहिये थी।

अब जो वह मर चुकी है तो मैं उसकी क़ब्र के पास यह कहने को आया हूँ कि तेरे साथ मेरा बचपन भी दफ़न है। दोनों बेजान हैं, दोनों कभी ज़िन्दा न होंगे, दोनों कभी मेरी बात न सुनेंगे। दोनों मेरे आँसुओं को न देखेंगे। उस बूढ़ी औरत के साथ निस्स्वार्थ प्रेम की आँखें हमेशा के लिये मुझ पर बन्द हो गयीं। मेरे दिल का सारा ख़ून उसकी आँखों के उस एक बूँद आँसू की क़ीमत अदा नहीं कर सकता, जो बिदा के समय उसकी सफ़ेद पलकों पर अटका हुआ था।

मेरा घर

वह घर, जिसे देश का पड़पोता समझना चाहिये, सूबे का बेटा, शहर का छोकरा, मोहल्ले का लड़का—वह बहुत बड़ा था। वह न मेरा घर था, न मेरे बाप का। बल्कि एक सेठ का मकान था। उसमें बहुत से कमरे थे, जैसे मकड़ी के जाले में बहुत से ख़ाने होते हैं। बहुतेरे लोग मक्खियों की तरह इन कोठरियों में रहते थे। एक तला दूसरे तले पर इस प्रकार चढ़ता चला गया था जैसे एक आस्मान पर दूसरा आस्मान रखा हो और चौथी मंज़िल पर वह सेठ उसी ठाट से रहता था जैसे प्रभु ईसा मसीह चौथे आस्मान पर बिराजते हैं।

इस मकान में 'सभ्यता' की बनाई हुई सब छद्म-सीमायें टूट गई थीं—धर्म और जाति के तिलस्म ढह गये थे। यहाँ हिन्दू-मुसलमान, ग़रीब-अमीर सब रहते थे। सदर फाटक के नीचे की बरसाती में कुली और फ़क़ीर दरबान को एक-एक आना देकर रात को सोते थे। आँगन में गाड़ीवान ताड़ी पीते, जुवा खेलते और क़व्वाली गाते थे। सीढ़ी से चढ़िये तो बायीं ओर नाई टोली था, उसके सामने भटियारों की दूकानें। निम्न श्रेणी की आबादी यहां ख़तम हो जाती थी।

ऊपर की मंज़िल में दफ़्तरों के बाबू और छोटे छोटे कारीगर रहते थे। एक कमरे में कोई बहीखाते बनाता था तो दूसरे में कोई खड़ाऊँ रँगता था और कहीं कोई तालों की मरम्मत का काम करता

था। इन्हींमें से एक कोठरी में मेरा घर था। किसी हिन्दी समाचारपत्र के सहायक सम्पादक के लिये इससे उपयुक्त वासस्थान भला और कौन हो सकता था !

रात को जब थका-माँदा अपने बसेरे में आता और बिस्तर पर पड़ जाता तो मेरी आव-भगत के लिये हर तरफ़ रेडियो, हारमोनियम और ग्रामोफ़ोन बज उठते थे; और मुझे छेड़ने के लिये आपस में गुप्त प्रपञ्च रचकर ऊँचे सुरों में क़व्वाली और भजन अलापने लगते थे। इनकी चुनौती में योगदान करके पड़ोस के घर की मारवाड़ी औरतें 'हम्मीर राणां जुग जीणों' की तान छेड़ देती थीं। हमारे मकान की जड़ में सुरंग खोदकर कुछ काबुली सूदख़ोर भी रहते थे। शाम को चरस पीकर और वज़नी पत्थरों की फेंक का खेल दिखला कर रात के समय यह गला फाड़कर आलम ख़ाँ की प्रेम-गाथा बखाना करते थे। यह आलम ख़ाँ एक पठान प्रेमी था। कैसे अचंभे की बात है कि प्रेम जैसी सरस कोमल भावना सात सात फ़ुट ऊँचे लठमारों को भी मोह सकती है। अँधेरे में लेटे-लेटे मेरी कल्पना आलम ख़ाँ का चित्र खींचती जो एक चटियल पहाड़ी पर खड़ा पैतरे बदल बदलकर किसी पठान सुन्दरी को मोहने का जतन करता होगा।

पर जब इस तुमुल नाद को दबाकर गाड़ीवानों का गगनभेदी नारा 'काली कमली वाला !' वातावरण की धज्जियाँ उड़ा देता, तो मेरा दिमाग़ संगीत की इस बाढ़ में डूब जाता था। उसका एक हिस्सा धुरपद के साथ नाचने लगता था तो दूसरा खम्माच पर सिर धुनता था। अभी मैं इस दोंगड़े की चौमुखी चोट से संभलने भी न

पाता था कि मोहल्ले की मस्जिद का मुल्ला कड़ककर अल्लाह के सर्वशक्तिमान् होने का ऐलान कर देता था। अब मेरी सहनशक्ति की कमर टूट जाती थी और इसके सिवा कोई चारा न रह जाता था कि अल्लाह मियाँ के आगे सिर दे मारूँ।

जब मेरी पलकें आप अपने बोझ के नीचे दबकर बन्द हो जातीं तो गोया मैं सो जाता था। नींद में केवल एक सपना दिखाई देता था—वह यह कि गवैयों ने दल बाँध कर मुझ पर हल्ला बोल दिया है।

गले से चीख़ का निकलना, आँखों का खट से खुल जाना, सूरज की पहिली किरण का झुक कर सलाम करना।

मैं हड़बड़ा कर उठ बैठता था। सुबह-सबेरे कश्मीरी रंगरेज़ आँगन में भट्टी चढ़ा देता था। पत्थर के कोयलों का धुवाँ किसी परदार साँप के समान उड़ता हुआ मेरे कमरे के अन्दर घुस आता था। अब तक मुझे उस रंगरेज़ की तपी हुई देह और तमतमाया हुआ दढ़ियल चेहरा याद है। उसके साथी नाँद के पानी को चलाते हुए कोई गीत गाया करते थे जिसकी तान इस पर टूटती थी—

"अय शाल! उबलते हुये पानी से जब तू निकलेगी तब कहीं इस योग्य होगी कि प्रिया की सहेली बने।"

नीचे के गोदामों में कच्चे चमड़ों के ढेर लगे हुये थे। मूक पशुओं की खालों में मनुष्य की पाशविकता की दास्तान घिनौनी दुर्गन्ध से लिखी हुई थी। मालूम नहीं, कितनी बीमारियों के कीड़े उस मकान में बिलबिलाया करते थे। भैंस की बू कुछ अफराई हुई

होती थी, गोह के चाम से भुने हुये कटहल की बू आती थी। इसी तरह विभिन्न खालों से भिन्न भिन्न प्रकार की दुर्गन्ध निकला करती थीं।

नहाने की चौकियों पर काले काले तोंदल शरीरों की भीड़ जमा होती थी और भाँति भाँति के पसीने आपस में मिलकर तरह तरह की खखारों के साथ नालियों में जमा हो जाते थे।

शुक्रवार के दिन एक ऐसी ट्रेजेडी हुआ करती थी, जिसकी याद अब भी मुझे दहला देती है। उस दिन प्रातःकाल भिखारियों की भीड़ उस विशाल अट्टालिका के प्राँगण में जमा होती थी। मकान-मालिक उन्हें एक-एक पैसा देकर अजस्र पुण्य का संचय किया करता था। अपने कमरे के बरामदे में खड़ा होकर मैं कोढ़ी, लंगड़े और अंधे भिखमंगों के उस जमघट को देखा करता था। इसके बाद कई कई दिन मेरी आत्मा क्षुब्ध और संतप्त रहती थी। ऐसा लगता था कि पददलित और लुंठित मानव-समाज अपने ईश्वर से भीख माँगने के लिये इकट्ठा होता है और वह जगत-सेठ इन अपाहिजों को ठोकरों के साथ कुछ जूठे टुकड़े बाँटा करता है।

मैं, जो सुस्ती और लापरवाही में अपना सानी नहीं रखता, इस हलाहल में भी स्वाद पाने लगा था। इस सड़ाँद की मुझ पर वही प्रतिक्रिया होने लगी थी जो जुगनू पर गोबर की ढेरी की। पता नहीं कि आदमी को एड़ियाँ रगड़कर मरते और मरने से पहिले पंचामृत पीते हुए देखकर आपको मज़ा आता है या नहीं। मेरे लिये तो इस दृश्य में बड़ा आकर्षण था और इसीलिये मैं वहाँ से किसी तरह टलने का नाम न लेता था।

मगर मेरे पुराने हितैषी पनवाड़ी और भटियारे को बड़ा आश्चर्य और खेद हुआ, जब एक दिन उन्होंने मुझे अपने सामान के साथ किसी छकड़े पर सवार पाया। उन्होंने भूलकर भी न सोचा होगा कि मैं ऐसी कर्मण्यता का भी प्रमाण दे सकता हूँ। पर पिछले दिन एक साथ दो ऐसी घटनाएँ हुईं जिन्होंने मेरी आत्मा को जगा दिया। सच तो यह है कि आज पहिली बार मुझे अपनी आत्मा के अस्तित्व का ज्ञान हुआ। अब तक शायद बदहज़मी के कारण मेरी आँतों में इस बेचारी का अचार बन रहा था।

जाड़े का मौसम था और भोर की घड़ी। मैं कपड़े पहिनकर इस इरादे से चला कि चाय पीकर गप शप करते हुए दफ़्र पहुँच जाऊँगा। सदर फाटक के पास पहुँचा ही था कि आँख चबूतरे के कोने पर पड़ी। टाट में लिपटा हुआ कोई जानदार बहुत ही धीमी आवाज़ में कराह रहा था। मैं ठिठक गया क्योंकि यह एक बूढ़ी औरत का शरीर था जो दम तोड़ने के लिये तड़प रहा था। पीप और थूक में सनी हुई यह अधमरी लाश पानी की एक बूंद के लिये सिसक रही थी। आने जाने वालों का ताँता लगा हुआ था। सब इस बुढ़िया को एक नज़र देखते और घिन के मारे अपने चेहरे को रूमाल में लपेटकर चले जाते थे।

मैं बरबस उस सड़ी हुई चटाई पर बैठ गया। क्षण भर में संसार के इतिहास की झाँकी आँखों के आगे फिर गयी। इसी असहाय बुढिया के समान घायल और बीमार मानवता जीवन-मार्ग पर पानी-पानी पुकारती हुई पड़ी थी। राजाओं, सूरमाओं और पंडितों का जुलूस रंग-बिरंगे कफ़नों में लिपटा हुआ उसकी ओर घृणा से घूरता

हुआ सभ्यता के रूमाल से मुंह छिपाये आँखें चुराये चला जा रहा था।

दिल की थकेन दूर करने के लिये उसी रात मैं नाटक देखने चला गया। नाटक का एक सीन मज़ेदार था। एक निराश प्रेमी आत्मघात कर लेता है, पर मरने से पहिले गाना नहीं भूलता। गाना दर्शकों को इतना भाता है कि 'वन्स मोर' की पुकार से नाटकालय गूँज उठता है। मुर्दे प्रेमी में जान पड़ जाती है, वह उठकर अपने प्रशंसकों की प्यास बुझाता है और फिर छुरा भोंककर मर जाता है।

नाटकघर से लौटते लौटते रात के दो बज गये! चारों ओर सन्नाटा था। मेरे घर के आँगन और दालानों में ग़रीब ख़र्राटे भर रहे थे; बीच बीच में कुत्ते धरतीवासियों और आकाशवासियों के पारस्परिक सम्बन्ध पर कड़ी टीका-टिप्पणी करके चुप हो जाते थे।

मैं सीढ़ी पर चढ़ ही रहा था कि नीचे की एक आंख ओझल कोठरी से कई मर्दों की कानाफूसी और एक औरत की दबी हुई चीख़ सुनाई दी। मैं खटका, दबे पाँव नीचे उतरा और कोठरी के दरवाजे के पास जाकर पट की दरार से अन्दर झांकने लगा।

दरवाज़ा अन्दर से बन्द था। बिजली की रोशनी बुझाकर एक मोमबत्ती जला दी गयी थी। एक औरत किसी मर्द के साथ खाट पर लेटी हुई थी और कई मर्द भूखे गिद्धों के समान घेरा डाले अपनी बारी की बाट जोह रहे थे।

रात को मैंने सपना देखा कि संसार औरत है, रुपया मर्द है और यह मर्द इस औरत के साथ बलात्कार कर रहा है।

* * *

पौ फटते ही मैंने अपनी फटी हुई किताबों, टूटे हुए बरतनों और पुराने कपड़ों को एक गाड़ी पर लादा। और आकर इस झोपड़ी में रहने लगा, जो जीवन के कोलाहल से बहुत दूर और मौत से बहुत निकट है।

भिखारी

कलकत्ता धोकड़ियाबागान—एक खोलाबाड़ी।

पूरब की जड़ में सफ़ेदी फैल चुकी थी। बाहर विधवा के आँसुओं के समान ओस बरस रही थी। संसार कदली-पात्र के समान जाड़े में ठिठुर रहा था। खोलाबाड़ी के अन्दर अँधेरा था। घर क्या, एक बड़ा-सा घोंसला था। ऊपर घास-फूस, इधर-उधर टट्टियाँ, नीचे गीली ज़मीन और उस पर कुछ कुत्ते और आदमी।

प्रातःसमीर शराब की दुर्गन्ध को बहा ले गया था। गलियों में अंडे के छिलके, जूठी पत्तलें हड्डियाँ और टूटी हुई बोतलें रात की वीभत्सता की याद दिला रही थीं। गन्दे कपड़ों में मुँह छिपाये वेश्याएँ सो रही थीं; उनके तकियों के नीचे उनके शरीर का मूल्य रखा हुआ था—पैसे और रुपये; रुपये कम और पैसे ज़्यादा। उनकी क़ीमत बहुत कम थी। रात का सन्नाटा कितना संगीतमय, कितना कवित्वमय था! मगर उनके बेसुरे आलाप और बेतुकी तानों ने सारी माधुरिमा को बेताल कर दिया था। वहाँ से दूर चौरंगी के आसपास पाप वैभव का नक़ाब पहन लेता था; पर यहां वह अपने नग्नरूप में ताण्डव करता था। एक जगह पाप सुन्दर कपड़ों और साफ-सुथरे मकानों में जाकर सभ्य बन जाता था। यहाँ वह असभ्य था, उद्दण्ड था, बन्धनहीन था।

इसी पाप की बस्ती में एक खोलाबाड़ी थी, जिसके द्वार पर एक

भैंसागाड़ी खड़ी हुई थी। गाड़ीवान कम्बल में लिपटा हुआ भी थरथरा रहा था। उसका साथी टीन के दरवाजे से ताला उतार रहा था। अन्दर से आदमियों के जम्हाई लेने और कुत्तों के कान फड़-फड़ाने की आवाज़ आ रही थी। हाँकनेवाले के हाथ में भैंस की खाल का एक चाबुक था। उसने किवाड़ खोलकर उसके अन्दर मुँह डाला। अन्दर से बन्द हवा का एक झोंका तड़प कर बाहर निकला, जैसे किसी पुराने पापी ने प्रायश्चित्त की साँस ली हो। वह आदमी राह छोड़कर हट गया। बेधुले आदमियों, बीमार कुत्तों, सड़ी हुई चटाइयों और जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों की दुर्गन्ध से बन्द हवा का भी दम घुटने लगा था।

अन्दर से लोगों के चलने-फिरने की आहट आने लगी। लोग अन्धों के समान सँभल-सँभल कर, टटोल-टटोलकर चलते थे। एक-दूसरे से टकराते थे और कभी कभी लड़खड़ा कर गिर पड़ते थे। सब अन्धे थे। किसी की आँखें बन्द थीं—उसके भाग्य-द्वार के समान—और वे कभी न खुल सकती थीं। किसीकी आँखें खुली हुई थीं—उनमें प्रकाश और आँसुओं के सिवा सब-कुछ था। किसी की आँखें फटी पड़ती थीं—जैसे उनकी डरावनी चितवनों में नरकाग्नि छिपी हुई हो। किसी की आँखें बिलकुल सफ़ेद थीं—कफ़न के समान। मगर सब आँखें प्रकाशहीन थीं। वे अन्धे भिखारियों की आँखें थीं।

उनमें मर्द-औरत, बच्चे-बूढ़े सभी थे। रात के सात बजे वही भैंसागाड़ी उन्हें यहाँ-वहाँ से समेटकर ले आती थी। खोलाबाड़ी के अन्दर सब एक साथ बैठ जाते थे। हर अन्धे के साथ एक-एक कुत्ता होता था—उसका जन्मसंगी। रात को उनके चम्मल में एक

आदमी खाने-पीने की कुछ चीज़ें डाल जाता था। मुहल्ले के होटलों में जो बचा-खुचा रह जाता था, उसे खोलाबाड़ी का मालिक ख़रीद लाता था। अन्धों के चम्मल में जूठे टुकड़ों से लिसी हुई हड्डियाँ, उगली हुई तरकारियों और बासी चावलों का ढेर लग जाता था। कुत्ते बीच बीच में चुपके से चम्मल में मुँह डालकर माँस के टुकड़े निकालकर मुँह चलाया करते थे। अन्धों को पता भी न चलता था, और चलता था, तो केवल उनके मुह बजाने से! तब वे चिल्लाकर या हाथ-पैर बजाकर उन्हें भगाने की निष्फल चेष्टा करते थे। पर बाद में वे चुप हो जाते थे। संसार में कुत्ते के सिवा उनका अपना कौन था? कहीं वे भाग न जायँ!

फिर अन्धे चटाइयों पर सो जाते थे। अपने थैले सिरहाने रखकर, दुख का कम्बल बिछाकर, गुदड़ियाँ ओढ़कर वे सो जाते। एक दूसरे को वे केवल स्पर्श से पहचान सकते थे। बड़े और बच्चे एक ओर,—बीच में कुत्ते—और जवान अन्धे-अन्धियाँ दूसरी ओर। बुढ़ापे और जवानी के बीच में कुत्तों ने एक दीवार खींच दी थी। रात को अगर नई दुनिया का रहनेवाला पुरानी दुनिया में लुढ़कना चाहता था, तो कुत्ते भोंककर उसे सचेत कर देते थे। बूढ़ों की साँसें ठण्डी होती थीं, जवानों की गर्म, और कुत्ते ख़र्राटे भरते थे। बूढ़ों के दिल गर्म होते थे, वे अलग-अलग सोते थे। जवानों के दिल ठंडे थे; वे लिपट-लिपट कर सोते थे। और कुत्ते कभी-कभी मानव-समाज पर कड़ी आलोचना कर उठते थे।

पौ फटते ही भैंसागाड़ी आ खड़ी होती थी। उस 'अन्धालय' का मालिक चाबुक से कुछ देर टीन के दरवाज़े को खटखटाकर अन्धों

को जगा देता था और किवाड़ खोल देता था। अन्धे हड़बड़ा कर उठ बैठते थे। एक दूसरे को जगाकर अपनी थैलियाँ और लाठियाँ उठाते थे। मालिक उन्हें गिनता जाता था। कभी-कभी दो-चार अन्धे सोते रह जाते थे, और वे बहुधा जवान होते थे। तब वह अन्दर घुसकर चाबुक से उन्हें जगाता था—उन्हें पीटता जाता था, उस समय तक, जब तक वे गाड़ी पर बैठ न जायँ। मुर्दा जानवर की खाल ज़िन्दा आदमी की खाल से मिलती थी और यह घसड़ एक चीख, एक आह, एक कराह बन जाती थी। अन्धा ईश्वर और मनुष्य को श्राप देता था, जो ईश्वर को उसके सिंहासन और मनुष्य को उसके आसन से नीचे खींचता जाता था—नीचे बहुत नीचे, रसातल की ओर!

गाड़ीवाला उनमें से एक-एक को एक-एक चौक पर छोड़ आता था। सड़कों के मोड़ पर बैठकर वे शून्य की ओर ताकते थे और अपनी भर्राई आवाज़ में भीख माँगा करते थे। उनमें से कोई ईश्वर का नाता देता था, कोई नंगे बच्चों का, कोई कई दिन की भूख का, और वे भीख देनेवाले को आशीर्वाद देते थे। ईश्वर से—हाँ, उसी ईश्वर से—उनके लिए प्रार्थना करते थे। वे गला फाड़-फाड़कर चिल्लाते थे—

'अन्धा घोड़ा, काला कम्मल, दे खुदा की राह पर!

'ना घर तेरा, ना घर मेरा—'

अन्धे यह रटते थे। दिन में एक-दो बार खोलाबाड़ीवाले का कोई जासूस लुक-छिपकर देख जाता था कि उनमें से कोई सो तो नहीं रहा है। आवाज़ लगाने में कोई ढिलाई तो नहीं करता है। रात

को अपराधी को रोटी नहीं मिलती थी और चाबुक अलग पड़ते थे, इसीलिए अन्धे दिन भर चिल्लाते रहते थे।

शाम को वह भैंसागाड़ी उन्हें लादकर घर ले जाती थी। झाड़-पोंछकर उनसे सब-कुछ ले लिया जाता था और बदले में वहाँ भोजन और विश्रामस्थल मिलता था। खाने के बाद अन्धे गीत याद किया करते थे। वे लोगों में करुणा और सहानुभूति उत्पन्न करने के उपाय सोचते थे। कोई सिर में पट्टी बाँध लेता था; कोई पैर में तेल लगा कर खाल उपेड़ लेता था; कोई लँगड़ा बन जाता था। दिन-भर में जो अन्धा अठन्नी न कमा सकता था उसपर मार पड़ती थी। उसे कम-से-कम आठ आने कमाने ही चाहिएँ।

अन्धे भिखारियों के लिए दिन रात, सुबह शाम, सब बराबर थे। वे केवल एक रंग को पहचानते थे। उनके चारों ओर अँधेरा था—आकाश, धरा, स्वर्ग, नरक—सब में अँधेरा था और उनके बीच में सूखी हुई रोटियाँ, गोली चटाइयाँ उड़ा करती थीं।

[२]

एक दिन रात को जब अन्धों में भोजन परोसा जा रहा था, तो कुत्ते किसी अदृश्य व्यक्ति की ओर देखकर भूँकने लगे। भोजन परोसनेवाले से एक ने पूछा—"चौधरी, कोई नवा मानुष आया है क्या?"

"हाँ जी, एक अन्धी लौंडिया हाथ लगी है; (चुपके से) चेहरा-मोहरा बड़ा अच्छा है जी; लोग सूरत देखकर ही पैसे निकाल फेंकेंगे। रधिया नाम है उसका।"

सब अन्धे अपनी ज्योतिहीन आँखों को फाड़-फाड़कर इधर उधर देखने लगे। केवल नन्दू सिर झुकाये जूठे टुकड़ों को चबाता रहा।

एक रसायनिक कारख़ाने में वह कभी काम किया करता था। एक दिन तेज़ाब की कोई बोतल उसके हाथों से गिर पड़ी थी और उसके दो-चार छींटों ने ही उसे अन्धा कर दिया। उसके बाद महीनों वह कलकत्ते की गलियों में ठोकरें खाया किया। एक दिन कोई आदमी उसे फाँसकर इस बन्दी गृह में ले आया था, जहाँ डेढ़ वर्ष से वह जीवन के दिन काट रहा था। फिर भी नन्दू अभी जवान था, उसकी धमनियों में ख़ून था—गर्म गर्म और गर्मी में आग होती है।

बाहर कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। वह अपनी गुदड़ी में घुसा हुआ सर्दी के मारे थरथरा रहा था। इतने में ऐसा जान पड़ा, जैसे गुदड़ी को कोई अपनी ओर खींच रहा हो। नन्दू ने समझा शायद कोई कुत्ता होगा। उसे हटाने के लिए जैसे ही उसने हाथ फैलाया, वह चीख़ पड़ा। उसके हाथ किसी के शरीर पर गिरकर जैसे स्पन्दनहीन हो गये। उसके शरीर में बिजली सी दौड़ गई। न जाने क्यों उसके मन में यह विचार दौड़ गया कि वह उसी नवोढ़ा को स्पर्श कर रहा है—"रधिया?"

"हाँ, तुम कौन हो जो?"

"तुम्हें जाड़ा लग रहा है, रधिया? मेरा नाम है नन्दू"

"हाँ, मेरे पास ओढ़ने को कुछ नहीं है। मेरे पैर ठंडे हो गये हैं।"

नन्दू ने उठकर अपनी गुदड़ी रधिया पर डाल दी। टटोल-टटोलकर उसे सिर से पाँव तक ढँक दिया और खुद हाथ पैर बाँधकर उसके पास बैठ गया। वह भी कभी आँखवाला था। रंग और प्रकाश का उसे भी कभी ज्ञान था। रंग, प्रकाश और संगीत –इनके संयोग से सौन्दर्य का जन्म होता है। अब केवल शब्दों की झनकार उसे सौन्दर्य का ज्ञान करा सकती थी। नन्दू रधिया का चित्र अपने मानस पटल पर खैंचने लगा। उसकी आवाज़ कितनी रसीली थी। वह नवयौवना की आवाज़ थी। नन्दू दम साधकर उसकी साँस के उतार चढ़ाव को सुनने लगा। उसे मालूम होने लगा कि साँसों के हिंडोले पर बैठकर वह धरती और आकाश के बीच में झोके खा रहा है। अपनी बन्द आँखों में कभी कभी उसे ज्वलंत चिनगारियां दिखलाई पड़ती थीं। नन्दू सोचने लगा कि उसकी अँधेरी दुनिया में सचमुच कोई चिनगारी उड़ आई है।

न जाने क्योंकर हर रात को वे एक दूसरे के समीप पहुंच जाते थे। धीरे धीरे वे एक दूसरे की चाल, आवाज़ और स्पर्श को पहचानने लगे। अन्धों की दुनिया में जैसे कोई प्रकाश-किरण उतर आई। उस निष्पाप निष्कलङ्क कुमारी का आगमन उसके जीवन का एक नया परिच्छेद था। संसार उसके लिए कितना प्रीतहीन था ? ईश्वर कितना क्षमाहीन था ? अन्धे को कभी किसी कोमलता और मधुरता की अनुभव न हुआ था। उसका दिल सख्त था सूखी रोटियों की तरह—पर जब रधिया चलती थी तो अन्धे की जीवन-तन्त्री के बिखरे हुए तार जैस सुलझ जाते थे। कभी कभी गाती थी। और थोड़ी देर के लिए अन्धा।अपने आपको भूल जाता था। फिर ठण्डी

साँस भरकर वह मन-ही-मन सोचा करता था कि वह अभागी इस बन्धन में कैसे आ फँसी ? बहुत दिनों के बाद नन्दू को इस भेद का पता चला था, और उसने इस रहस्य को दिल की गहराइयों में छिपा दिया था—इतनी गहराई में कि उसमें झाँकते हुए अब उसे भी भय मालूम होता था। अब रधिया और नन्दू एक ही गुदड़ी ओढ़ कर सो जाते थे। उन्हें सर्दी नहीं जान पड़ती थी। रात के सन्नाटे में एक बार रधिया ने नन्दू को अपनी जीवन-कथा सुनाई थी। उसका बाप किसी कम्पनी में क्लर्क था। वह बूढ़ा था, मां बीमार थी और उनकी इकलौती बेटी रधिया अन्धी थी। वह माँ-बाप की नयनतारा थी। ढाई वर्ष पहले कम्पनी बन्द हो गई। बेकारी और बुढ़ापा—वह भी एक बुढ़िया और अन्धी बेटी के साथ! इसका मतलब समझना बहुत कठिन है। दो-तीन महीने के अन्दर घर का बहुत सा सामान एक-एक करके चोर बाज़ार पहुंच गया। फिर भूख की ज्वाला और लगातार अनशन, चिन्ता और श्रम के कारण बूढ़ा भी रोगग्रस्त हो गया। अन्धी रधिया उसके तलवों को सहलाती जाती थी और उसकी आंखों से अविरल अश्रु-धारा बहती थी। उसकी समझ में नहीं आता था कि सन्ताप और यातना को किस प्रकार कम करूँ। इसी बीच में उनके घर में उसकी मौसी का पदार्पण हुआ। मौसी की सूरत तो रधिया न देख सकती थी; पर उससे न जाने क्यों उसे डर मालूम होता था। वह रोज़ आती थी और उसकी माँ से कानाफूँसी किया करती थी। इस मन्त्रणा में कभी-कभी उसका बाप भी शामिल होता था। पहले औरतों के प्रस्ताव पर वह क्रोध से चिल्ला उठता था; पर धीरे धीरे वह भी शान्त होने लगा—यहाँ तक कि कई

दिनों के बाद वह भी कानाफूँसी करने लगा। रधिया को आश्चर्य होता था कि इस गुप्त मन्त्रणा का अर्थ क्या है। उससे सारी बातें छिपाई क्यों जाती हैं ? उसका हृदय धड़कने लगता था; किसी अदृष्ट विपत्ति के भय से वह काँप उठती थी।

उस घटना को याद करके रधिया की हिचकियाँ बँध गई थीं। एक दिन उसकी माँ और मौसी ने नहला-धुलाकर उसका शृंगार किया था। चोटी गूँथते-गूँथते उसकी मां रोती जाती थी। रधिया भय-चकित रह गई थी। वह भी चुपके-चुपके रोने लगी थी। यह क्यों हो रहा था ? इस गोरख-धन्धे को वह खाक समझ सकी थी ? पहले कभी-कभी एक रहस्यमय शब्द उसके कानों तक पहुँचा करता था—गीतों में उसने कई अर्थहीन शब्द सुने थे—यौवन, प्रीतम, प्रेम और जाने क्या-क्या। रधिया यह सोचकर काँपने लगी कि शायद उसका विवाह होनेवाला है; शायद वह जवान हो गयी है। उसे अपने प्रीतम के पास जाना है। यह सारी नव-भावनाएँ उसके लिए कितनी जानलेवा थीं। प्रीतम ? यह किस किस्म का जानवर होता है ? प्रेम ? यह कैसी बीमारी है ? रधिया कुछ न समझ सकती थी।

बाल सँवार कर मौसी उसे एक रिक्शे पर बिठला कर अपने साथ ले गई। माँ-बाप ने रोते-रोते उसे बिदा किया और कह दिया कि घबराइयो नहीं, सवेरे मौसी तुझे यहाँ छोड़ जायगी। मौसी दम-दिलासा देकर उसे न-जाने कहाँ ले गई। रधिया जैसे चेतनाहीन हो गई थी। उसे इतना याद था कि किसी ने खूब खिला-पिलाकर देर तक बहुत-सी बातें सिखाई थीं, जिनका अर्थ बाद में—बहुत बाद में उसकी समझ में आया था। हाँ, इतना तो वह अवश्य समझ गई

थी कि मौसी के कहने पर चलने से उनकी सारी दरिद्रता दूर हो जायगी। उसके माँ-बाप आराम से रहेंगे। रधिया आनन्द-विभोर हो गई थी। यही तो उसके जीवन की कामना थी।

रात हुई; रधिया एक मुलायम बिस्तर पर बैठकर न जाने किसकी प्रतीक्षा करने लगी। किसी व्यक्ति ने द्वार खटखटाया। मौसी ने किवाड़ खोले, उसे अन्दर करके फिर ताला जड़ दिया। रधिया के पास कोई आदमी मौसी के साथ आ खड़ा हुआ। दो कठोर हाथों ने उसकी ठोड़ी पकड़कर उसके विवर्ण मुख को ऊपर उठाया। फिर कुछ देर तक मौसी उससे विवाद करती रही। फिर रुपये खनकने लगे और पल-भर बाद मौसी ने रधिया को पुचकारकर उसके आंचल में कुछ रुपये बाँध दिये। फिर किवाड़ बन्द हुआ और मौसी बाहर चली गई...दो हाथों ने रधिया के शरीर को लपेट लिया...यही प्रेम था। दुर्गन्धमय मुख उसके मुख पर झुक गया। उसके गाल और ओठ कड़े बालों से छिदने लगे; दुर्गन्ध से दम घुटने लगा;—यही जानवर 'प्रीतम' था। रधिया का जीवन अन्धकारमय हो गया!

प्रति दिन प्रातःकाल रधिया अपने घर लौट आती थी और शाम को मौसी उसे अपने साथ ले जाती थी। रोज़ नये-नये 'प्रीतम' आते थे; प्रति दिन उसका विवाह होता था। दो साल बीत गये; आये दिन वह बिकती थी; कभी इस बाज़ार में, कभी उस बाज़ार में। घूमते-फिरते हुए वह थककर इस अन्धालय में गिर पड़ी थी।

३

एक दिन रधिया रात को न लौटी।

नन्दू द्वार की ओर मुख किए साँस रोके किसी की पदध्वनि सुन

रहा था। उसके कम्मल में कुत्तों ने मुँह डाल दिया ; पर वह चुपचाप किसी की बाट जोहने लगा। रात हो गई, अन्धे और कुत्ते सभी सो गये ; पर नंन्दू वहीं बैठा रहा। रधिया कहां रह गई ? नन्दू चुपके से उठा। एक-एक अन्धे के पास गया और गौर से उसकी सांस की आवाज़ सुनने लगा। वह कई बार टकराया और कई बार गिरा—मगर कोई नहीं ! नन्दू फिर आकर अपनी जगह पर बैठ गया। अपनी आंखें जाने से भी उसे इतना कष्ट न हुआ होगा। आज उसके जीवन की विभूति ही गुम हो गई थी। अब उसका नयन-पथ शून्यमय था ; आज उसका जीवन-पथ उजड़ गया था।

सुबह लाठी और थैली सँभालते-सँभालते नन्दू ने धीरे से पूछा—"चौधरी, रधिया कहीं भाग गई क्या ?"

चौधरी हंस पड़ा ; चाबुक से उसे कुचलकर कहा—"तुम्हारे लायक नहीं थी, वह लौंडिया ! आँख के अन्धे नाम नयनसुख ! जानते हो, कितने दाम लगे हैं—पाँच सौ ! पूरे पाँच सौ ! कड़ाया के राय हीराचन्द ने पूरे पाँच सौ दिये उसके। समझे सरऊ ? प्रेम का पैंग बढ़ा रहे थे बेचारे।" यह कहकर चौधरी ने भैसों के साथ नन्दू को भी दो चार चाबुक रसीद कर दिये।

नन्दू चौक पर सिर झुकाये देर तक चुपचाप बैठा रहा। कभी-कभी वह सुना करता था कि मनुष्य में आत्मा नाम का कोई तत्त्व होता है, उसकी अनुभूति न की थी। लेकिन रधिया के साथ जैसे उसके जीवन में कोई नई बात पैदा हो गई थी। आज आँखों के साथ संसार भी उसके लिए अन्धकारमय हो गया था। नन्दू ने दिन-भर कोई आवाज़ न लगाई ; आसपास के दूकानदार उसकी चिल्लाहट से

तंग आ जाते थे ; अन्धे को आज निःशक्त देखकर उन्हें कुछ अचम्भा-सा हुआ। नन्दू के बेताले गीत से कुत्ते प्रेरणा हासिल करते थे। आज वे बार बार उसे सूंघकर, प्रश्नसूचक भंगी में गुर्राकर अलग हट जाते थे। नन्दू खामोश था, और जैसे सारी दुनिया उसके लिए खामोश हो गई थी।

झुटपुटे के साथ नियमानुसार एक भैंसा गाड़ी वहाँ ठहरी और नन्दू दूसरे अन्धों के साथ उस पर सवार हो गया। कड़ाया के पास गाड़ीवान का साथी कूदकर अन्दर आ गया, और अन्धों ने गाँठ से पैसे खोलने शुरू किये। नन्दू ने बिना कुछ कहे हुए उसके हाथ पर चार पैसे रख दिये। चौधरी ने पैसे गिनकर जेब में रखे और उसके गले पर हाथ रखते हुए पूछा—"और पैसे कहाँ हैं ?"

नन्दू के मुँह से बोल न निकला ; वह चुपचाप बैठा रहा। चौधरी ने एक घूँसा जमाकर उसकी झोली छीन ली और उसे छान डाला, फिर गरजकर कहा—'बोलता क्यों नहीं है ? छटा हुआ है साला ! ठहरो, बाड़ी तो पहुंच जायँ।"

भूख और चाबुक की मार के कारण नन्दू उस रात को सो न सका। दो दिन तक यों ही हुआ किया। नन्दू जब लौटता, तो उसके पास दो-चार पैसे से अधिक न होते। आदमी आवाज़ को भीख देता है ; मौन के आगे उसके हाथ रुक जाते हैं। मार की मात्रा दिन-दिन बढ़ती जाती थी ; पर नन्दू को भी हठ-सी हो गई थी। जब चौथे दिन भी यही हुआ, तो तंग आकर चौधरी ने उसे अपने घर से लात मार कर निकाल दिया।

गर्मी का मौसम और आधी रात का सन्नाटा। नन्दू की समझ

में न आया कि कहाँ जाय। भूख के मारे अँतड़ियाँ ऐंठ रही थीं, पैर थरथरा रहे थे। फिर भी ठण्डी ठण्डी हवा पलकों को थपकियाँ दे रही थी ; नन्दू सरक्यूलर रोड की मोड़ के फुटपाथ पर लेट गया। उसके लिए सारा संसार दो अक्षरों में सिमट आया था—भूख ! ईश्वर उसे इस पाप-सर में ढकेल देता है, कारखाना उसे अन्धा कर देता है, चौधरी लात मारकर उसे निकाल देता है। अन्धी आँखें और सूखी रोटियाँ— समाज से ले-देकर उसे यही मिला था। उसके जीवन-मरु में सोता फूटा था ; पर उसे भी एक सेठ ने निर्जल कर दिया था ! भूख और अँधेरा—अँधेरा और भूख ! ऊपर तारे ज़मीन-वालों को हालत पर मौन-भाषा में विवाद कर रहे थे। थककर नन्दू की आँखें बन्द हो गईं।

घंटे-भर के बाद वह घबराकर उठ बैठा। उसके समान बहुत-से गृहहीन अभागे फुटपाथ पर सो रहे थे। एकाएक वे चिल्लाकर इधर-उधर भागने लगे। उनमें भिखारी मोटिये, ग़रीब जहाज़ी और उस श्रेणी के सब लोग थे, जिनके पास परलोक की आस के सिवा कुछ नहीं होता। उनकी चिल्लाहट के साथ नन्दू को लाठियों के प्रहार की ध्वनि भी सुनाई दी। सारा मामला उसकी समझ में उस समय आया, जब उस पर भी दो-तीन लाठियाँ पड़ गईं। पुलिस की लाठियाँ—कालदण्ड के समान निठुर, निर्मम और कठोर। मनुष्य के हाथ में एक बेजान लकड़ी, जो बिना कुछ कहे सुने हड्डियों को तोड़ती, मांस में घुसती और ख़ून टपकाती जाती थी। फुटपाथ पर वे क्यों सोते हैं ? अगर वे मकानों के किराये नहीं दे सकते, तो उन्हें संसार में रहने का क्या अधिकार है ? सड़क के दाएँ-बाएँ ऊँची ऊँची हवे-

लियां दरिद्रों पर सिर उठाकर हँस रही थीं। इन्हीं मजदूरों ने उनका निर्माण किया था। उनकी एक-एक ईंट दरिद्रों के खून से सनी हुई थी। दरिद्रों को हड्डियों पर उनका आधार रखा गया था। यह फुट-पाथ, यह बाग, यह मकान, यह संसार—सब सर्वहारा के हाथों से तैयार हुआ था, फिर भी सर्वहारा गृहहीन, आश्रयहीन और पथ-हीन था !

पुलिस का हल्ला आँधी के समान फुटपाथ पर सोनेवालों को खोजता हुआ आगे बढ़ गया। नन्दू बड़ी देर बेसुध ज़मीन पर पड़ा रहा। उसके सिर से गर्म ख़ून निकल रहा था और आँसू क बूँदों में मिल रहा था। सामने के मकान की चांदनी से संगीत-लहरी निकलकर पूर्वकुमारी को जगा रही थी। नन्दू का हृदय स्पन्दन जैसे बन्द-सा होने लगा। इसी आह्वान को सुनने के लिए वह कितना विकल था ! इसी तान में कभी उसने अपनी आत्मा को ढूँढ़ निकाला था—मगर वह संगीत किस सभा में गूँज रहा था ? बीच-बीच में निर्लज्ज अट्टहास, शराब के कागों की उड़ान और कुत्सित परिहास ! नन्दू समझ गया कि यही सेठ हीराचन्द का मकान है।

फिर उसकी आंखें बन्द हो गईं।

———

मज़दूर

कलकत्ते के एक दैनिक पत्र के किसी पिछले अंक में यह समाचार प्रकाशित हुआ था—"हावड़ा की एक गली में कल एक शोचनीय घटना हो गयी। एक मज़दूर अपनी स्त्री और बच्चों के साथ अपनी कोठरी में मरा हुआ पाया गया। आत्महत्या का सन्देह होता है। पुलिस खोज कर रही है।"

इस तीन लाइन के समाचार के ऊपर किसी रईस के पुत्र-जन्मोत्सव का विवरण आधे कालम में था। इसलिए किसी ने आँख उठाकर भी उसे न देखा। फिर भी इस दुर्घटना का सारा हाल मुझे अवगत है।

एक तंग कोठरी १२ फीट लम्बी और ८ फीट चौड़ी, जिसके द्वार पर सूर्य की किरणें प्रभात के समय पल-भर मँडरा कर ओझल हो जाती थीं! जिसकी चौखट पर आते ही हवा के झोंके बेसुध होकर पलट पड़ते थे!

उस गली से होकर मुहल्ले की नाली निकलती थी। कीचड़ और दुर्गन्ध, मच्छर और कीड़े! कमरे की दीवारें सील से मढ़ी हुई, जिनमें चूहों के बिल और छत पर चमगीदड़ों के अड्डे!

बरसात में गली में बहुधा जलप्रलय आ जाता था। कभी-कभी नाली से निकल कर दो-चार साँप दीवार पर रेंगते थे और छत की कमानियों से लटक कर कोठरी के अधिवासियों को निर्निमेष नेत्रों से

ताका करते थे। तब भोला मुँह अँधेरे काम पर जाने के पहले बिलों में कपड़े जमाकर ठूँसता और सोते हुए बच्चों पर साँप से बचने का मन्त्र फूँक कर चल खड़ा होता !

पांच बच्चे......एक, दो तीन, चार, पाँच ! उसकी स्त्री मुनिया ने पाँच साल में पाँच बच्चे जन दिये थे। सब नंगे ! भूखे ! पीले ! सदा रोगी !

फ़र्श पर एक फटी हुई चटाई बिछी थी। पड़ोसी जुम्मन के मरने से भोला को केवल इतना लाभ हुआ था। चटाई पर बोरिये और बोरियों पर फटी हुई दुलाई और उन पर भोला, मुनिया और उनके बच्चे !

दूसरे कोने में चूल्हा और मिट्टी के बरतन। अलगनी पर कई फटे-पुराने कपड़े लटके हुए। लकड़ी के सन्दूक में गिलट के गहने, बच्चों की ताबीज़ और भोला की रामायण ! सामने दीवार पर हनुमानजी का एक भयोत्पादक चित्र, जिसे बच्चे सुबह उठकर सहमे-सहमे प्रणाम करते थे। यह था उस कमरे का सरंजाम !

मुँह अँधेरे 'स्वराज मिल' की सीटी काल-निनाद के समान वातावरण को कँपा देती थी। भोला चौंक कर उठ बैठता और कपड़े पहन कर भागाभाग मिल की ओर चल पड़ता था।

कपड़े ? हाँ ! हाँ ! भोला के पास कपड़े भी थे ! उसके बच्चे नंगे थे, पर उसके पास कपड़े थे। मिल स्टोर से वह अपने लिए धोती और मुनिया के लिए साड़ियाँ खरीद लाया था। सेठजी ने उसे एक पैसा फी-गज छूट दी थी। भोला उन्हें आशीर्वाद देते हुए कपड़े उठा लाया था। बच्चों के लिए भी उसने पाँच जोड़े कपड़े बनाये

थे—एक वर्ष पहले—और अब वे फट गये थे। सेठजी ने उसे कपड़े उधार दे दिये थे—केवल दो पैसा फी गज़ सूद पर! हाँ, तो भोला कपड़े पहने ठीक छः बजे मिल के फाटक पर पहुंच जाता था!

प्रातःकाल छः बजे से सन्ध्या छः बजे तक, भोला मशीनों पर चिपटा रहता था। बीच में दो घंटे का अवकाश मिलता था, जिसमें रामभरोसे से सत्तू ख़रीदकर वह खा लेता और उसी की दूकान के भीतर थोड़ी देर लेट रहता था

फिर वही मशीनो की गड़गड़ाहट! उनके कल-पुरज़ों का भयंकर जन्तुओं के समान ऐंठना, तिलमिलाना, बल खाना और अपने अचेतन अवयवों को मज़दूरों की ओर फैलाना!

मज़दूरों का खून पसीना बनकर निकलता और मशीनों पर टपकता था। और मशीनें स्वभावानुसार कभी गिरती थीं, कभी उछलती थीं! कभो मानवी मशीनों को अपना क्रीतदास पाकर अट्टहास कर उठती थीं!

शाम को मिल से सब मज़दूर निकलते थे। थकावट से चूर! पाँव लड़खड़ाते हुए! निर्वाक्! निःशब्द! सिर से लेकर पाँव तक धुएँ के कारण धूमिल और कपड़े तेल व तारकोल में लथपथ!

उनमें से कुछ ढीठ ठर्रे का अद्धा मुँह से लगाये, कुत्सित गालियाँ बका करते थे और सब हँसने का प्रयत्न करते थे। उनकी हँसी नर-कंकाल के विकट हास्य के समान जान पड़ती थी!

भोला की गली के मुहाने पर सड़क धोने के लिए फुटपाथ पर मैले पानी का एक नल लगा हुआ था। उसके नीचे बैठ कर रोज़ शाम को वह नहाया करता था। उसके बच्चे अपने मैले और सूखे

हुए हाथ उसके शरीर पर रखकर अपनी मुरझायी हुई आवाज़ में 'दद्दा' कहा करते थे। तब भोला को भान होता था कि उसकी आँखों से गर्म आँसू की बूँदें निकल कर नल के मैले पानी में मिल रही हैं!

नहा कर वह अपनी कोठरी में न जाता था। वह जानता था कि उस समय मुनिया रसोई कर रही होगी। धुएँ के भबके निकास की राह न पाकर कोठरी में पर तौलते थे। आँखों में, कान में, नाक में साँस के साथ धुँआँ घुस जाता था। मुनिया आँखें पोंछते हुए, खाँसते हुए, रोटियाँ पकाया करती थी!

प्रत्येक शनिवार को भोला को दस आना प्रतिदिन के हिसाब से तीन रुपये १२ आने मिल जाते थे। भोला रुपयों को ठोक बजाकर देखता और गाँठ में बाँध लेता था।

परिवार के लिए वह उत्सव का दिन होता था। भोला बच्चों के लिए गुड़ की जलेबियाँ और मुनिया के लिए सड़े हुए आमों में से छाँट कर कुछ अधसड़े आम खरीदता। हनुमान जी के चित्र को धूनी देने के लिए अगर की बत्ती खरीदना भी वह न भूलता था।

उस दिन भोला की उदासी दूर हो जाती थी। कन्नू साव के यहाँ बैठकर वह आधी लबनी ताड़ी भी पी लेता था। भोला कभी-कभी प्रसन्न भी हो सकता था!

उक्त दुर्घटना के एक दिन पहले की बात है। जड़काले के दिन थे और दुनिया कुहासे और अँधियाले की चादर ओढ़े हुई थी। मिल की सीटी बजते ही भोला उठा और चुपके से दिया जलाकर

मुनिया के पास गया, जो दुलाई ओढ़े ज़मीन पर पड़ी थी। मुँह पर प्रकाश पड़ते ही मुनिया ने कष्टपूर्वक एक उसाँस भरी और करुण नेत्रों से भोला की ओर देखा।

छः महीने से वह रोग-शय्या पर पड़ी हुई थी और अब वह रोग-शय्या मृत्यु-शय्या में बदल गयी थी। भोला ने धीरे से उसके कपाल पर हाथ रखा और चमक कर 'ओह' कह उठा! माथा जलता तवा सा हो रहा था! भोला ने खैराती अस्पताल की दवा मुनिया के मुँह से लगायी; अपने बड़े बेटे को जगाया और सीधा मिल की ओर भागा। ज़मीन उसके पैरों के नीचे से खिसकी जाती थी!

छः महीने? हाँ, मुनिया छः महीने से बीमार थी! एक दिन रसोई पकाते-पकाते खाँसी के साथ उसके मुँह से खून गिर पड़ा था। तब से उसे बुखार रहने लगा था। ख़ून बराबर आता था। हाथ पाँव गिरे जाते थे। यहाँ तक कि तीन मास से दो क़दम चलना भी दूभर था।

भोला उसे रिक्शा में लादकर डाक्टर सेन के पास ले गया था। डाक्टर ने परीक्षा करके भोला से कहा था कि रोगिणी को क्षयरोग हो गया है। रोग अभी असाध्य न था। किसी पहाड़ की हवा......सफ़ाई......रोशनी........दूध और फल.......डाक्टर ने यही तो कहा था।

भोला उसके हाथ में पाँच रुपये रखकर अपनी स्त्री को लिये हुए चुपचाप उसी कोठरी में लौट आया था। तब से प्रायः हर रात को सोते में बर्राया करता था—

"दूध और फल ....रोशनी और हवा। डाक्टर की......
मुनिया के थूक में खून......बच्चे उसे चाटते.......।"

सचमुच में उसके सपने बड़े डरावने और घिनौने हुआ करते थे। कभी-कभी वह देखता था कि मुनिया का कलेजा उसके मुँह से निकल पड़ा। उसमें इल्लियाँ हैं—लम्बी-लम्बी—और वे सरसराती हुई बच्चों के कानों में घुस रही हैं।

तब भोला चौंक कर उठ बैठता था। कड़कती हुई सरदियों में भी वह पसीने से शराबोर हो जाता था। हृदय की धड़कन की आवाज़ वह साफ़ सुन सकता था।

मुनिया के बिछौने के पास मिट्टी का एक प्याला रखा हुआ था जिसमें वह थूकती थी। बच्चे सुबह-शाम प्याले बदल दिया करते थे। मक्खियाँ रक्त-मिश्रित थूक पर बैठती थीं; फिर अपने पंखों में उसे लिपटा कर बच्चों के मुँह पर भिनभिनाती थीं।

चूल्हे के पास बैठ कर छज्जू रमनी की सहायता से रोटियाँ पकाता था और तीनों बच्चे बाहर गटर में खेलते थे। गटर में कूड़े-करकट के साथ कभी-कभी फलों के छिलके और मिठाई की जूठन निकल आती थी। बच्चे गटर में उतरकर अच्छी तरह उसकी तलाशी लेते और जब कभी खाने की कोई चीज़ मिलती तो किल-कारी मार कर मैले पानी के नल के पास पहुँच कर उसे धोते और फिर बाँटकर उसे खा जाते।

सड़क के मोड़ पर किसी सराफ की ऊँची हवेली थी जिसके पीछे की कोठरी में एक कुत्ता बँधा रहता था। उसकी झबरेदार

दुम और मुलायम बालों में नौकर प्रतिदिन ब्रुश किया करता था। दोनों बेला उसके लिए दूध और शोरबा आता था। बच्चे उस शानदार कुत्ते को ईर्ष्यापूर्वक देखते, कभी बचे हुए दूध को लोलुप नेत्रों से ताकते और मन में सोचा करत कि काश, हम कुत्ते होते!

नन्हा सरजू एक बार साहस बाँध कर ऊँघते हुए कुत्ते के सामने से दूध का प्याला खिसका लाया था। तीनों बच्चों ने दूध को चखकर देखा था। उस पर कैसी मोटी मलाई पड़ी हुई थी।

तब से बच्चे सोचा करते थे कि सराफ़ के कुत्ते होते तो कितना मज़ा था।

मुनिया को दवा पिलाकर उसका पति काम पर चला गया। छज्जू ने उठकर चूल्हा जलाया और दूध गरम करके अपनी मा के पास ले आया। कोढ़ीखाने का नौकर यह दूध दो आने सेर बेचा करता था। मुनिया वही दूध पीती थी।

फिर छज्जू आटा और लकड़ी लेने के लिए बाजार चला गया। बच्चों के कोलाहल का रव बाहर गली से आ रहा था। मुनिया ने कराहकर करवट बदल ली। उसकी स्वप्निल आँखें अतीत की स्मृति से शिथिल होने लगीं।

कभी वह भी जवान थी। उसके अंग-अंग से लावण्य टपकता था। और भोला? कैसा सजीला जवान था वह। खेत की मेड़ पर बैठ कर पहट को जब वह बाँसुरी बजाता था तब मुनिया की गगरी आपही-आप कैसे छलकने लगती थी!

फिर एक दिन भोला ने सुनसान अरहर के खेत में उसकी बाँह कैसे थाम ली थी। इधर-उधर नवल हरीतिमा, ऊपर आकाश और दिन का उजाला। और खेतों के बीच में किसान का प्रेम-प्रदर्शन। मुनिया को वह दिन खूब याद था।

पर विवाह होते ही उनकी गृहस्थी पर जैसे शनि सवार हो गया। लगातार तीन साल पानी नहीं बरसा। भोला ने लाख जतन किये पर ज़मीन्दार ने उसे तकावी नहीं मिलने दी।

बात यह थी ज़मीन्दार मुनिया पर रीझ गया था। एक-दो बार राह चलते छेड़खानी भी की थी। पता चलते ही भोला गँड़ासा लेकर ज़मींदार पर दौड़ पड़ा था। तकावी का मूल्य था—स्त्री का सतीत्व!

भोला इसके लिए तैयार न हुआ। बनिये से वह एक आना रुपया सूद पर रकम लेकर लगान दे आया था।

मुनिया की बन्द पलकें आँसुओं से भीग गयीं। उसे वह दिन याद आया जब बनिया पुलिस की सहायता से उन्हें ज़मीन से बेदखल कर रहा था उधर ज़मींदार उनका सामान झोपड़ी से निकलवा रहा था।

भोला की आकृति पाषाण के समान कठोर हो गयी थी। खेत में सरसों फूल रही थी। हवा उनसे छन छनकर गुनगुनाती जाती थी—"कुछ नहीं है, कुछ नहीं है।"

मुनिया अपने दोनों बच्चों को गोद में लिये अपने सामान

को देखती और रोती थी। पति के जीते-जी उसका सोहाग लुट रहा था।

इसके बाद उसका जीवन इस अँधेरी, दुर्गन्धमय कोठरी में सदा के लिए परिबद्ध हो गया। गरमी में उबलना, जाड़े में ठिठुरना बरसात में भीगना! साँप, बिच्छू, मच्छर और खटमल!

मुनिया का अन्तस्तल चीख़ उठा। पहले उसका पति संसार के लिए अन्न पैदा करता था। वह किसान था। अब वह कपड़े के मिल में काम करता था। वह मज़दूर था। फिर भी वे सब एक-एक मुट्ठी अन्न को क्यों तरसते थे? एक-एक गिरह कपड़े को क्यों मोहताज थे? मुनिया इस रहस्य को न समझ सकी। फिर भी संसार के प्रति उसका हृदय घृणा से परिपूर्ण हो गया!

सामने हनुमान जी सन्तोषपूर्वक अपनी दुम हिला रहे थे। मुनिया का जी चाहने लगा कि उस चित्र को तोड़कर चूल्हे में झोंक दे। कितनी अगर की बत्तियाँ सूँघी थीं हनुमान जी ने। फिर भी भूख, बीमारी और सन्ताप की मात्रा बढ़ती ही जाती थी!

बाहर गटर के पास बच्चे खुशी से चिल्ला रहे थे—'वह देख केला—साबूत है—नीचे से सड़ा है—और वह अमरूद......।"

उस दिन शाम को जब भोला मिल से लौटा तो पैर एक-एक मन भारी हो गये थे। आँखों के आगे हर चीज़ उड़ी-उड़ी-सी जान पड़ती थी। मालूम होता था कि वह किसी आग के झरने में तैर रहा है।

एक महीना पहले स्वराज मिल के प्रबन्धकों ने २५ प्रतिशत मजदूरी कम करने का नोटिस दिया था। आज नोटिस को मियाद समाप्त होने पर मजदूरों ने हड़ताल की धमकी दी जिसके जवाब में अनिश्चित काल के लिए मिल बन्द करने की घोषणा कर दी गयी थी।

भोला ३ रुपये १२ आने मुट्ठी में दबाये जैसे यमलोक की ओर जा रहा था! तीन रुपये बारह आने!

यह यमलोक का किराया था!

भोला मुनिया की बीमारी, बच्चों की भूख और अपनी बेकारी सब कुछ भूल गया! अभी उसके सामने रहमान काबुली की सूरत काल के समान घूम रही थी!

मुनिया के इलाज के लिए भोला ने तीन महीने पहले ५० रुपये उधार लिये थे, आना रुपया सूद के हिसाब से। और एक रुपया प्रति सप्ताह देने पर भी मूल अभी ज्यों का त्यों बना हुआ था। तीन महीने का वादा कई दिन पहले समाप्त हो चुका था। लाख टालमटोल करने पर भी काबुली का असन्तोष बढ़ता ही जाता था।

भोला चोर के समान आगे-पीछे देखता चलता था। मन-ही-मन दुर्गा का पाठ कर रहा था कि आज तो वह न मिले। आज को रात ज्यों-त्यों गुजर जाय।

मगर, हाय रे मोह! उसको गली की मोड़ पर ही काबुली यमदूत के समान अपना काल-दंड लिये खड़ा था। रक्त, मांस और हड्डियों का एक ढाँचा! जो मशीन से भी अधिक निर्मम था।

भोला भय से काँप उठा। पिटे हुये कुत्ते के समान वह काबुली के आगे ठिठक गया।

काबुली के मुँह पर जंगली घास-पात के समान चारों ओर बाल उग आये थे। दाँत भेड़िये के समान पीले और तेज़ थे। उसने लाठी पर भार देकर कहा—"रूपी निकालो भाई, रूपी—अम ज़ियादा बात नईं माँगता। अड़तालीस रूपी चार आना।"

भोला ने सिटपिटाकर कहा—"आगा साहब, अब तक तो कोई इन्तज़ाम नहीं हो सका। घरवाली के रोग के कारण किसी भाई-बन्द के घर न जा सका। एक हफ़्ते और धीरज धरिये। आज के ही दिन कोई सामान हो जायगा।"

काबुली ने अपने बड़े-बड़े पंजे फैलाकर कहा—"रूपी, रूपी! अम घर वाली को नईं जानता। जब वह अच्छा था तब साला रूपी नईं माँगा। फिर तो अम माफ़ कर देता।"

भोला के ठंडे खून में कुछ गरमी आ गयी। उसकी आँखों के आगे वह दृश्य घूम गया जब वह गँडासा लेकर ज़मीदार पर टूट पड़ा था। पल भर बाद ही वह अपनी परिस्थिति को समझ गया। चिरौरी-बिनती करके ख़ान को उसने दो दिन के लिए शान्त किया। ख़ान गालियाँ बकता हुआ एक महामारी के समान लाठी से ज़मीन नापता दूसरी ओर चला गया।

भोला कुछ देर तक चित्र-लिखित-सा वहीं खड़ा रहा। फिर वह

एक लम्बी साँस लेकर मुहल्ले के पार्क की ओर चल पड़ा। एक सुनसान कोने में वह घास पर गिर पड़ा।

उसके चारों ओर कैसी चहल-पहल थी। कैसी अठखेलियाँ थीं। कैसी रंगरेलियाँ थीं। धनिकों के बच्चे अपनी दायाओं के साथ किलोलें कर रहे थे। आकाश में तारे खिले हुए थे। धरती पर पेड़ और पक्षी मगन थे। सब चराचर प्रसन्न थे—एक के सिवा—और वह अभागा मज़दूर था।

अपना पूरा जीवन उसे आँसुओं में तैरता दिखायी पड़ा। एक आह और एक आँसू। यह थी उसके जीवन की बिसात।

ये बच्चे कितने स्वस्थ और प्रसन्न थे। उनके शरीर मखमल के समान कोमल थे। मगर भोला के बच्चों ने क्या पाप किया था? अगर भूखे ही मरना था तो वे पैदा क्यों हुए?

भोला अपने-आप को धिक्कारने लगा। उसने इन बच्चों को क्यों पैदा किया? संसार का कौन-सा सुख उनके लिए था? पैदा होने के बाद ही कुत्तों के साथ गटर में खेला किये। बड़े होने के बाद वे क्या करेंगे? भीख या जेब-कतराई। इसके सिवा वे क्या करेंगे? बीमार होने के बाद वे एड़ियाँ रगड़-रगड़ कर मरेंगे! ऐसा क्यों होता है?

भोला संसार समाज और ईश्वर—सब को पड़ा-पड़ा कोसने लगा। एक असहाय, शक्तिहीन बूढ़े के समान वह सब को कोसने लगा।

कल सुबह होगी। मुनिया फिर खून थूकेगी। बच्चे भूख,

भूख ! चिल्लायेंगे। काबुली 'रूपी रूपो' शोर मचायेगा। मिल बन्द होगी। उस पर मौत का सन्नाटा होगा।

मौत—मिल की ? नहीं; बेकार मज़दूर की। भोला की, उसकी बीमार स्त्री की, उसके बच्चों की।

मौत ! बीमारी ! भूख ! बेकारी !

भोला को चारों ओर बीमारी के कीड़े और यमदूत उड़ते हुए दिखायी दिये ! उनके आसपास अथाह गढ़े थे जिनमें संसार का सारा धन-वैभव समा रहा था !

मौत ! बीमारी ! भूख ! बेकारी ! इनसे कहीं निस्तार न था !

रात को जब भोला घर लौटा तो उसके हाथों में मिठाई का एक बड़ा-सा दौना था। उसके पैर लड़खड़ा रहे थे। आँखें उलटी पड़ती थीं और मुँह से शराब की दुर्गन्ध निकल कर धुएँ, कुहासे और नाली की सड़ायन को और भी कष्टकर बना रही थी।

जीवन में उसने पहली बार शराब पी थी—पूरी एक बोतल। बहुत दिनों के बाद वह इतनी सारी मिठई लाया था। एक सेर। और वह भी रुपये सेर वाली।

उसके सलूके की जेब में एक शीशी थी, जिसे वह बड़ी सावधानी से छिपाये हुए था।

भूखे बच्चे रोते-रोते सोने की तैयारी कर रहे थे। मिठाई का दौना देखते ही वे आकुलतापूर्वक उस पर टूट पड़े। भोला ने उन्हें चुमकार-पुचकार कर रोका और मुनिया के सिर पर झुक गया। वह उसे कातर नेत्रों से ताक रही थी।

थोड़ी देर तक दोनों चुपके-चुपके न जाने क्या कहते रहे।

बच्चों ने केवल इतना देखा कि भोला की आँख से आँसू की बूँदें निकल कर उनकी माता की अश्रुसिक्त पलकों पर गिर पड़ीं।

कितनी व्यथा, कितनी यातना, कितनी बेकली छिपी थी उन चार बूँद आँसुओं में !

आँसू विद्रोह की भाषा है ! रक्त विद्रोह की रोशनायी है ! थूक विद्रोह की लेखनी है ! आँसू, खून और थूक उस अँधेरी कोठरी में समाज के अत्याचार के विरुद्ध षड़यन्त्र कर रहे थे !

× × ×

दूसरे दिन दोपहर को उस कोठरी से ऐसी तीव्र दुर्गन्ध उठने लगी कि पड़ोसियों के दिमाग़ तिलमिला उठे। नाली में रोज़ मरे हुए चूहे सड़ा करते थे। उसकी बास सहने की उन्हें आदत हो गयी थी। पर भोला की कोठरी से जो बू उठती थी उसमें कोई निराली बात थी। सारी गली की हवा जैसे ज़हरीली हो गयी हो !

और वह दुर्गन्ध बढ़ती ही जाती थी। अगर उसे रोका न गया तो वह संसार भर में फैल जायगी और सारा मानव-समाज उसमें साँस लेकर घुट कर मर जायगा।

कोठरी का दरवाज़ा तोड़ा गया। अन्दर पाँचों बच्चे एक दूसरे से लिपटे पड़े थे। मुनिया और भोला के ओठ भिड़े हुए थे और उन पर मौत की मुसकुराहट खेल रही थी। हर चीज़ काली, धुँधली और उदास जान पड़ती थी ! हनुमान जी के सदा-प्रसन्न मुख पर भी कालिमा दौड़ गयी थी !

फौरन् पुलिस को इत्तिला की गयी। पुलिसवालों ने नाके बन्द

करके कमरे को एक पल देखा। मिठाई के दोने और शीशी को देखकर सिर हिलाया। पड़ सियों से दो-चार बातें पूछीं और वापस चले गये!

आधे घंटे के बाद दो मेहतर मुर्दा ढोने की गाड़ी लिये हुए पहुँचे और सातों लाशों को उस पर लाद दिया!

मोड़ पर सराफ़ अपने मकान की दीवार के पास खड़ा चींटियों को चीनी खिला रहा था। एक मोटा साँड़ वहीं पड़ा हुआ कभी पूरियोंको खाता था, कभी उगलता था। कुत्ता दूध पीकर अघा गया था और अपने जबड़ों को चाट रहा था।

सराफ़ मुर्दा गाड़ी को देखकर चबूतरे पर उचक पड़ा!

"जमादार, किसकी लाश है?"

"इसी गली में कोई भोला मज़दूर रहता था, सेठजी! माई पिल्ले सब ज़हर खाकर मर गये। पेटफोड़ी लिये जाते हैं।"

सेठ ने तोंद सहलाते हुए कहा,—हूँ! कुत्ते को बहुत तंग करते थे ये पिल्ले। अरे छोटू चबूतरे पर गंगाजल छिड़क दे! ऐसे आदमियों से तो हमारे जानवर अच्छे हैं!"

ऊँचे-ऊँचे मकानों और बन्द रास्तों से उलझती हुई हवा गुनगुनाती जाती थी—"कुछ नहीं है! कुछ नहीं है!"

——

मरघट !

मरघट नदी-किनारे था। छोटा सा मैदान जिसमें कभी कुछ न उगता था। और उसकी मिट्टी सियाह थी, जमे हुए लहू की तरह सियाह।

कगार के पेड़ों पर सदा पतझड़ रहती, और उनकी डालियां अकाल-ग्रस्त किसानों के समान हमेशा बादलों का मुँह ताका करती थीं। उन पर गिद्धों और कव्वों के सिवा और कोई बसेरा न करता था। दूर तक हड्डियों के टुकड़े बिखरे पड़े थे, और यहां वहां एक आध खोपड़ी जीवन के परिणाम पर बाछें चीर कर हँस पड़ती थी। नदी की धारा हौले हौले बहती चली जाती थी। कभी कोई मौज घाट से टकरा कर सिर उठाती, मरघट की उदासी को देखती और फिर सिर झुका कर अपनी राह लग जाती थी।

वहां उस शाम को शहर वाले किसी की अर्थी ले कर आये थे। चिता रच दी गयी, लाश उस पर सजा दी गयी। किसी ने उस पर घी छिड़का, किसी ने आग दिखायी और चिता, किसी ग़रीब की झोपड़ी की तरह, पल भर में जल उठी।

मर्द एक तरफ़ शोक में डूबे हुए बैठ गये। औरतें दूसरी तरफ़ चुप चुप रोती रहीं।

चिता तेज़ी से जलने लगी। दो आदमी लंबे लंबे बांसों से लाश को इधर उधर लौटाने लगे। मांस के अधजले टुकड़े उड़ उड़ कर

ज़मीन पर गिर पड़ते थे; चर्बी जल जल कर वहीं बैठ जाती थी। और लपटें कुत्तों की तरह हड्डियों को जबड़े में दबा कर चबातीं और अपनी दृष्टिहीन आंखों से हर तरफ़ घूरती थीं।

अंधेरा हो चला था। बादलों के दो चार गुलाबी टुकड़े ऊपर उड़ रहे थे और एक दो तारे तीरों की नोक के समान आकाश में छिदे पड़े थे। चारों ओर सन्नाटा था। चिताग्नि के मर्मर के अतिरिक्त और कोई आवाज़ न आती थी।

अजबी लोहार ने अंगोछे के कोने से चिलम निकाली और उस पर चिता का एक अंगारा रख कर, दायें बायें किसी ऐसे संगी को ढूँढने लगा जो उसी की तरह बातचीत करने को उतावला हो। मगर हवा में बोझलपन सा था, और मौत की मौजूदगी में सब लोग खो से गये थे।

अजबी ने दोनो मुट्ठियों में चिलम थाम कर इस ज़ोर से कश खींचा कि कई चिनगारियाँ ऊपर उछल पड़ीं। फिर उसने किसी अज्ञात व्यक्ति को संबोधन करके कहना शुरू किया : "हरि बोल!··· राम जाने गोली उसकी छाती में लगी। मैं मोरी में छिप कर सब देख रहा था। वह झंडा लिये हुए आगे आगे था। जब जुलूस चौक के पास पहुँचा, तो घुड़चढ़ी पुलिस के जवान रास्ता रोके खड़े थे। कप्तान ने डाँट कर कहा आगे जाना मना है'। भय्या, और सब तो बग़लें झाँकने लगे। लेकिन इन छोकरों का कलेजा बड़ा है। उन्होंने कहा—"हम आगे जायेंगे, आप रास्ता छोड़ दीजिये...।"

छोटू धोबी बात काट कर बोल उठा, "क्या बकते हो। इतनी

बातचीत का मौक़ा कब था ! पुलिस आँधी की तरह हम पर झपट पड़ी, भागने का अवसर कहाँ था। जैसे बे-बादल बिजली गिर पड़े। कई भागते भागते गिर कर घोड़ों की टाप के नीचे आ गये। कई रपट कर मुँह के बल गिरे—कोई नाली में, कोई सड़क पर। लाठियों से जिनके हाथ पाँव टूटे, उनकी बात ही अलग है।"

अजबी बोला "अच्छा, यही सही। जो भी हो, वह था सूरमा-सामन्त। झंडा लिये हुए अपनी जगह पर डटा रहा। इतने में कोठों से पत्थर बरसने लगे और इधर बंदूकों से गोलियाँ। भय्या, जैसे बवण्डर में आम का हरा-भरा पेड़ गिर पड़े। बस, वैसे ही छिन भर मे ऐसा पहाड़ सा जवान छलनी हो कर गिर पड़ा।"

सब चुपचाप आग में किसी निशान को घूर रहे थे। घटाटोप अंधेरे में दूर से वह चिता ऐसी लगती थी, जैसे धरती पर बिजली चमक रही हो।

नायक ने जोर से कहा—"राम नाम सत है ! काल सिर पर खड़ा हो तो किसका बस चलता है। अगर यह अभागा वहाँ से भाग जाता तो क्या था। पर वह तो कहो कि भाग का बदा टलता नहीं।

लक्खू मिस्तरी आँखें तरेर कर चीख़ उठा : "क्या कहा ? भाग जाता ?—अरे, मेरा बेटा और भाग जाता !····"उसने बेबस निगाहों से सब की तरफ़ देखा, "ऐसी बात न कहो। उसकी आत्मा को दुःख होगा। वह नादान सही, मगर दूसरों की तरह हेटा न था। उसे अपने देस के झंडे की लाज थी।"

"ऊँह ! अजी, तीन बालिश्त कपड़े से कहीं देस की लाज आती-

जाती है। मैं तो तुम्हारा भला सोच कर कहता हूँ। क्या मुझे उसके मरने का दुःख नहीं। अरे, मैं तो इसलिये कहता हूँ कि इस बुढ़ापे में तुम्हें कौन पालेगा। जवान बेटा, घर का सिरमौर। उसके छोटे छोटे बच्चे, बूढ़े मां-बाप। यह सब कहाँ जायेंगे। क्या देस तुम्हें रोटियाँ देगा?"

लक्खू ने एक गहरी सांस ली। उसका पड़ोसी सच कहता है। अब वह क्या करेगा। देस तो अमीरों के लिये था। ग़रीबों का देस कहाँ है। घर का किराया, पानी का महसूल, रोशनी का टेक्स, और जब मर जाओ तो मरघट के चौधरी की दक्षिणा। इन सबसे ज्यादा, देवता का भोग। वह काना देवता जो अफराये हुए मेंढक की तरह मंदिर में बैठा अपनी दुम हिलाया करता है। कहाँ था वह, जवान बेटे की मौत के वक्त।

लेकिन नहीं। उसका बेटा क्या ऐसा अनैला था। उसने कुछ सोच कर अपनी जान दी थी। लक्खू के मन में विचारों का तार सा बँध गया।

शम्भू ने सिर हिला कर कहा, "आज सुबह तक वह भला-चंगा था। हथौड़े की एक एक मार से वह लोहे को पानी कर रहा था। लेकिन अब देखो, सीसे की एक छोटी सी गोली हवा में सनसनाती हुई आयी और बिना कुछ कहे उसके सीने में घुस गयी। हड्डी को तोड़ कर सीने को चीर कर वह दिल के अन्दर बैठ गयी और वह मर गया। हाय राम, जीना कितना कठिन है और मरना कितना सहज!"

अजबी लोहार ने धुँएँ को मुँह के आगे से हटा कर कहा,

"और जब आदमी मर जाता है, तो क्या छोड़ जाता है। नाम तो बड़े आदमियों का रहता है। ग़रीबों का नाम-धाम क्या! वह तो भाई-बन्धुओं के लिये अपनी याद छोड़ जाते हैं और यह याद ज़िंदगी भर काँटे की तरह टहोके दिया करती है। दिनों की दूरी घाव पर मरहम का काम करती है; सब अपने अपने धंधे में लग जाते हैं और कभी सोचो तो ऐसा लगता है कि पिछले जन्म की कहानी है।"

लक्खू का रोआँ रोआँ काँपने लगा। जिन लोगों ने उसके बेटे के हाथ में झंडा थमाया था, वे कहाँ थे। वे इस मरघट में न थे। वे सब बड़े लोग थे। वे शूद्रों के मरघट में कैसे आते!

लेकिन क्या उसके बेटे ने ग़लती की थी। क्या समझ कर झंडा उसने अपने हाथ में लिया और वह गोलियों के सामने सीना ताने खड़ा रहा। क्या उसे किसी का ध्यान नहीं आया।

औरतों का क्रन्दन धीमा पड़ गया था। वह अपनी सूजी हुई आँखों से चिता को ताक रही थीं, जिस पर अब लाश का निशान तक न रहा था।

लक्खू के हृदय में विद्रोह की ज्वाला जलने लगी। संसार इतना कृतघ्न क्यों है। उसके बेटे ने दूसरों के लिये जान दी थी। अपनों को भुला कर वह दूसरों के लिये मर मिटा था। और ये लोग यहाँ बैठे बातें बना रहे हैं।

नायक ने धीरे से कहा: "अजबी, देखो और कितनी देर है। भूख के मारे प्राण मुँह को आ रहे हैं।"

इतने में छोटू ने आंखें फाड़ कर सब को इस अन्दाज़ से देखा, जैसे उसे कोई भूली हुई बात याद आ गयी हो: "करीम ख़ाँ हवलदार

कहता था कि जो लोग अर्थी के साथ मरघट जायेंगे, सरकार में उनकी रपट की जायगी।"

"ऐं यह क्यों ?"

"इसलिये कि वह सरकार का बैरी था। भाई, समझते नहीं। उसने गोली नहीं चलायी तो क्या, गोली खायी तो सही ? फिर वह बैरी हुआ या नहीं ?"

"हूं", नायक ने कपड़े झाड़ना शुरू किया, "ठीक कहते हो। वह किसी ऐसे-वैसे की गोली से नहीं, सरकार की गोली से मरा। बिकट मामला है, क्यों जी अजबो ?" अजबी अपनी झोली संभालने लगा, "टेढ़ी बात है और करीमखाँ हवलदार कोई मामूली आदमी है ? अजी बड़े बड़े महाजन उसके नाम से थर्राते हैं। जिसके घर चाहे डाका डलवा दे और जिसे चाहे चोरी के इलज़ाम में बँधवा दे। आज शहर में इसी का राज है।"

सब लोग डर कर इधर उधर यों देखने लगे, जैसे करीमम ख़ाँ का भूत मुँह फाड़े हुए उन्हें निगलने को आ रहा हो।

तारों की छाया में पेड़ों के डुण्ड अपने सूखे हुए हाथ फैलाये हुए अँधेरी रात से किसी चीज़ की भीख माँग रहे थे। लक्खू घुटनों पर सिर रखे अर्धचेतनावस्था में बैठा हुआ था। बहुतेरे लोग एक एक करके सरक गये और जब आग मद्धिम पड़ी तो सिर्फ़ चार पांच आदमी रह गये।

लक्खू का दिल अन्दर से रोने लगा। यह देस और देस वाले ! उन्होंने ऐसा क्यों किया ? मौत के आगे तो सब बराबर हैं। सब को एक दिन इसी आग में जाना है, इसी पानी में सब को बह जाना

है। बस यह भी न कर सके, कि एक आन के लिये आयें और मरने वाले की विधवा के आंसू पोंछ जायें, उसकी माँ के टूटे हुए दिल पर समवेदना का एक फाहा रख जायें।

सेठ छज्जूमल, कांग्रेस कमिटी के सभापति—क्या वह जवान बेटे की जान लेने के बाद भी उसका क़र्ज़ माफ़ न करेंगे ?

कुंवर प्रतापसिंह, बड़े देशसेवक, क्या करीम ख़ाँ हवलदार के चुंगल से उसे नहीं बचायेंगे।

बरसात आ रही है। घर का छप्पर छाना है, दीवार को काम लगाना है, भट्टी को ठीक करना है। मगर उसकी बांह में पहिले की सी सकत कहाँ। मज़दूर का बेटा, एक ज़रा सी गोली से छिद कर—वह भी किसी लोहार की बनायी हुई—मर गया, और आग उसे ले गयी।

चिता ठंडी पड़ने लगी। औरतों ने उसमें पानी का छींटा दिया, मर्दों ने उसमें आँसू झटके, "राम नाम सत है" की आवाज़ से मैदान गूँज उठा। दूर से गीदड़ों ने जवाब दिया, "हुआ, हुआ, हुआ...!!"

जब सब चलने लगे तो लक्खू ने देखा कि उसके पैरों के पास एक कपड़ा पड़ा हुआ है। यह वही फटा हुआ तिरंगा झंडा था, जिसे कलेजे से लगाये हुए उसका बेटा मर मिटा था। लेकिन यह झंडा देखने में कितना बदसूरत था—घास फूस की तरह हरा, बुढ़ापे की तरह सफ़ेद, बीमारी की तरह पीला !

लेकिन अब ख़ून में रंग कर वह लाल हो गया था। लाल—ज़िन्दगी और मौत का रंग !

लक्खू ने उसे उठा लिया। इसमें ऐसा कौन सा जादू था, जो लोग उस पर सब कुछ वार देते हैं। कपास की खादी, जो करघे पर बुनी गयी और रंगरेज़ के घर रंगी गयी, इसमें रखा ही क्या था?

जो भी हो वह अब एक आदमी के लहू में रंग चुका था। और यह लहू ताज़ा था, नौबहार फूल की तरह और ज़ोर था आग की तरह।

औरतें, एक के पीछे एक, टूटी हुई आवाज़ में सियापा गाती हुई घर की तरफ़ जा रही थीं। हवा हलकी थी, और रात का दामन ओस की बूँदों से भीगा हुआ था। दूर से नदी की धारा किसी घायल पंछी के समान कराह रही थी।

धरती की आग बुझ गयी थी, लेकिन आकाश के दीपक जगमगा रहे थे!

भविष्य की ओर

सुबह से लेकर शाम तक हमारा काम इतना था कि पत्थर की गिट्टियों को अपने दुरमुस से तोड़ा करें। एक नीरस, निरन्तर मर्मर उठता और हमारे दिमागों पर बराबर प्रहार करता रहता था। अपना सिर हमें बहुत हलका जान पड़ता जैसे किसी ने गूदा निकाल कर उसमें गर्म लावा भर दिया हो। चारों ओर शून्य था अनन्त शून्य, और दायें-बायें रेल की पटरी साँप के समान लहरा रही थी। लोहे का मोटा पत्तल पत्थरों को चूर-चूर कर देता और उनके अनगढ़ किनारे अपनी पैनी नोकों को किसी नर्म चीज में चुभोने के लिए उत्सुक रहते। कभी-कभी इस रगड़ से एक-आध चिनगारी निकलती और बुझ जाती थी। हम सब अभिमानपूर्वक उन चट्टानों को ताकते जिन्हें पहाड़ियों के वक्षस्थल से हमने छीना था और उन पुलों को, जिनकी बेड़ियाँ हमने नदियों को पहना दी थीं। फिर हम उन झण्डियों की ओर देखते जिनका सिलसिला जङ्गल के भीतर तक चला गया था। पलास और देवदारु के झुरमुटों में वैसा ही घना अंधेरा था जैसा हमारे भाग्य में, और उनकी ऊँची-ऊँची फुनगें आकाश के प्रति अपनी मूक-व्यथा जतलाने के लिए बेचैन रहा करती थीं।

इञ्जिन के कोलाहल, ट्राली के स्पन्दन और दुरमुस के कलरव में हमारी उसासें गुम हो जातीं। बीच-बीच में कोई साथी "धीरे

चलो, धीरे चलो", 'जोर से-जोर से' का राग छे‌ता। हम सब इस निरर्थक गीत में सुर मिलाते ताकि मर्मतल में सञ्चित क्षोभ इसी बहाने बाहर निकल आये। और भट्टी पर रखे हुए कड़ाहे में कोलतार का गाढ़ा फेटा उबलता, कसमसाता और सनसनाता रहता था। पीछे नदी की लहरें पुल के खम्भों से टकराकर झाग उगलने लगतीं और अस्फुट स्वर में कुछ गुनगुनाती हुई भाग जाती थीं। जब सूरज लाल लाल आँखों से हमें घूरता तो हम थके हारे अपनी झोपड़ियों में जा बैठते जहाँ सूनापन अपनी बेबसी पर विलाप किया करता था।

हमारे जीवन में कोई नवीनता न थी। नदी-नाले, चाँद-तारे पेड़-पक्षी सब चराचर निर्बाध गति से अपने ध्रुव-पथ पर चला करते। हमारी दिनचर्या में भी कोई अन्तर न होता था। हम सब जैसे मशीनों से बने हुए आदमी थे। हम धीरे-धीरे कल्पनाहीन, भावनाहीन होते जाते और हमारी शब्दावली भी परिमित होती जाती थी। काम से लौटने के बाद जी न चाहता था कि हम कुछ कहें, सुनें या देखें। एकमात्र अभिलाषा यह रह जाती कि आकाश और धरती के बीच हवा ही हवा हो और जमीन पर लेट कर ऊपर एकटक देखते हुए जोर-जोर से साँस लिया करें। काम करते हुए जब सामने की ओर ताकते तो जान पड़ता कि किसी अदृश्य शत्रु को ढूँढ़ रहे हैं, और उस समय गिट्टियों पर दुरमुस के जो वार पड़ते वे अधिक विकट होते थे। तब हम पत्थर की चिनगारियों को न देख सकते थे, क्योंकि हमारी आँखों के आगे भी चिनगारियाँ उड़ने लगती थीं।

इस विभीषिका में हमारे मनोरञ्जन के केवल तीन साधन थे— चार वर्ष का अनाथ लड़का बालम, मिस्तरी नायक और उसकी

मैना। हम सब एक वर्ष से बालम को पाल-पोस रहे थे। उसे अपने बीच में देख कर जैसे जीवन का कोई रक्त-बिन्दु परिपूरित हो जाता था। उसके कोमल शरीर पर अपने कड़े हाथ फेरते हुए भी हम झिझकते थे। स्नेहातिरेक में भी हम डरते-डरते उसके बालों को सुहलाते और उसे गोद में उठाते थे। जब वह विस्मयविस्फारित नेत्रों से अपने मृत पिता को ढूँढ़ने लगता या तारके मोटे खम्भे को अपने हाथों से घेरने की चेष्टा करता, जिसे उसके पिता ने खड़ा किया था, तो हम काम बन्द करके उसकी गतिविधि को जाँचने लगते थे। कभी वह किरणों की आभा में नदी-तट पर जा बैठता और लहरों में कंकरियाँ फेंका करता। यह जानने के लिए मैं कितना उत्सुक हो उठता कि उसका नन्हाँ दिमाग क्या सोचा करता है! कभी-कभी वह उदास और अनमना-सा रहता। तब मैं सोचा करता कि क्या जीवन विषाद के ही साँचे में ढला हुआ है? क्या मानव-जगत् में कोई भी निश्चिन्त और मुदित नहीं? यह बच्चा किस सोच में रहता है? कौन-से कुचले हुए अरमान उसे टहोके दिया करते हैं? क्या हमारे समाज के अन्तर्जगत् में शोक-सन्ताप के निःश्वासों के सिवा कुछ नहीं?

हम सब उसके काका थे। पौ फटे वह हमारी झोपड़ियों के किवाड़ों को खटखटाता और उसका मधुर पुकार हमारी निःस्वप्न निद्रा में स्वर्गीय सङ्गीत बन जाती। मुझे याद है कि जब उसे चेचक निकली तो रात-भर हम किस प्रकार मनमारे उसके बिछौने के पास बैठे रहे। बूढ़ा निमाई मुझे लिये हुए फीकी चाँदनी में जङ्गल में कोई जड़ी बूटी ढूँढ़ने निकला था। पेड़ों की छाया में चन्द्रमा की

क्षीण किरणें शाखाओं से छन-छनकर कोढ़ के चकत्तों के समान घट-बढ़ रही थीं। चारों ओर हाहाकार के साथ निस्तब्धता थी, ठीक वैसे ही जैसे वहिर्जगत् का शोर और अन्तर्जगत् की खामोशी। निमाई ने बहुत खोज-ढूँढ़ कर उस पौधे को निकाला जिसमें कुछ फूल खिले हुए थे। हमने उन्हें तोड़ा और लपकते हुए डेरे की ओर लौटे। मैंने फिर कर देखा कि वह पौधा उस विधवा के समान सिसकियाँ भर रहा है जिसके बच्चे घायल होकर सामने गिर पड़े हों। रातों रात हमने दूध में घिस कर वे फूल उसके शरीर में लगाये थे और शीतला माता को मनाने के लिए इतने गीत गाये थे कि वायु-तरङ्गें भी सुन्न हो गयी थीं। बालम के अच्छे होने के बाद हम लोग काम बन्द करके शीतला माता के दर्शन के लिये ११ मील पैदल चले गये थे।

और तो और, वे किरण्टे, जो हमसे सीधे मुंह बात न करते थे, बालम को चुमकारते-पुचकारते और मिठाइयाँ दिया करते थे। हम यह न देख सकते थे कि इस स्नेह में हमारा कोई साझेदार बने। किरण्टों का भय उसके मन में बिठलाने के लिए हम नित नये किस्से गढ़ा करते; मगर उनके इञ्जन और मशीनों में बालम के लिए बड़ा आकर्षण था। हमारी आँखें बचा कर वह चुपके से इञ्जन के पीछे जा छिपता और उसके कल-पुर्जों को बड़े कौतूहल से निहारा करता। किरण्टे उसे ट्राली में घुमाते और तसवीरें दिखलाते। इन उपायों के आगे हम परास्त हो जाते, पर किरण्टे उसे कहानियाँ और गीत कहाँ से सुना सकते थे? जब मैं तोता-मैना की कहानी पढ़ता या निमाई आल्हा-ऊदल छेड़ देता, बालम किलकारी मार कर किरण्टों के पास

से छिटक आता। इस प्रकार महीनों यह प्रतिद्वन्द्विता चलती रही। अन्त में जीत हुई हमारी, जब मिस्तरी नायक एक दिन मैना का पिंजरा लिये हुए हमारे दल में आ मिला।

नायक की मैना कोई ऐसी-वैसी मैना न थी। जैसे सङ्गीत, उमङ्ग और चहक ने साकार रूप धारण कर लिया था। उसके जीवन में केवल एक परिताप था—वह पिंजरे में बन्द कर दी गयी थी। हमेशा पिंजरे की तीलियों से चोंच निकाल कर वह जङ्गल की ओर देखा करती। जब वह किसी विहङ्ग-समूह को देखती तो उसकी आवाज में कितना दर्द छलकने लगता! उसके पंख आप-ही-आप फड़कने लगते और थोड़ी देर के लिए वह अपने-आपको भूल जाती। स्वच्छन्द और स्वतन्त्र होने के लिए वह इतनी आतुर क्यों थी? शायद उसे पता न था कि हम इस आजादी से कितने तङ्ग थे। हमारी दुनिया में पाप स्वतन्त्र था और सत् काराबद्ध। आत्मा और मानस पर प्रतिबन्धों का एक भारी बोझ था, हाथों में जञ्जीरें—और हम स्वतन्त्र थे। नायक की मैना इन बातों को क्योंकर समझती। बेलाओं के बिछुड़ते और मिलते समय वह अपनी रागिनी छेड़ती और जान पड़ता कि समाज की कुरूपता पर सौन्दर्य हँस रहा है।

बालम और मैना की मित्रता कितनी सरस थी, कितनी चितभावन। जब वह अपनी तोतली बोली में कोई गीत गुनगुनाता तो मैना उसे पास बुलाती और देर तक अपनी आपबीती सुनाया करती। धीरे-धीरे वह भी हमारी जिन्दगी की इनीगिनी अछूट आवश्यकताओं में से एक हो गयी। कितनी अजीब थी वह चिड़िया!

मिस्तरी नायक अपने ढङ्ग का निराला आदमी था। उसने हमारे दिल के कैसे कैसे घावों को कुरेद दिया, हमारे मानस पटल पर कैसी अमिट लकीरें खींच दीं! रहस्य, क्रोध और विद्रोह का कैसा करुण सम्मिश्रण था वह। हमारी आंखों से अज्ञान और मोह के पर्दों को उसने कितनी बेदर्दी से नोच फेंका था! आज जब मैं सोचता हूँ कि अज्ञान में कितनी शान्ति और ज्ञान में कितनी बेकली होती है तो उसे कोसे बिना नहीं रहा जाता। कैसी भयङ्कर प्रलयशिखा प्रज्वलित थी उसके हृदय में! नायक किसी दूसरे संसार का अधिवासी था।

पहले ही दिन उसकी आतङ्ककारी बातों ने हमें दहला दिया। चौदहवीं का चाँद पूरी सतर्कता से पृथ्वी के पापों को गिन रहा था। अन्तरिक्ष तक एक हल्का सा कुहासा छाया हुआ था और हरीतिमा ने फीकी सी अंधियाली और धूमिलता की चादर ओढ़ ली थी। हम सब चारपाइयों पर पड़े हुए इधर-उधर की बातें कर रहे थे। मैंने आकाश की ओर नजर बाँध कर कहा—'नायक भैया, कितनी भली है आज की चाँदनी! हर रोज ऐसा ही मनभावन दृश्य होता तो जीवन भार कितना हलका हो जाता!"

नायक उपलों की बुझती हुई आग को एक कमची से उसकाते हुए ठहाका मार कर हँस पड़ा। उस धुंधलके में भी उसकी आँखों की विद्रोहाग्नि को मैं देख सकता था। 'चाँदनी, प्रकाश और तारे! क्या तुम भी इनमें कोई सौन्दर्य देख सकते हो? तुमने कभी सोचा है कि इनकी गतिविधि को देखकर ही मनुष्य ने ईश्वर को पैदा किया, जो अज्ञान का दूसरा नाम है। तुम नहीं जानते कि धर्म का विष इसी चाँदनी की प्याली में हमारे होठों तक पहुंचा और अब हमारी रग-

रग में रम गया है। जानते हो, तुम्हारे सारे दुख-दर्द का मूल वही ईश्वर है जिसे तुमने चाँद और सूरज को देख-देख कर पैदा किया मैं चाहता हूँ कि चारों ओर अँधेरा हो—घटाटोप, और यह चाँद टूक-टूक होकर गिर पड़े। क्या तुम्हारे घिनौने, बदनुमा जीवन में भी कोई सौन्दर्य है ? न देखो, न देखो, बाजीगर के इन खिलौनों की ओर न देखो।"

यह कह कर वह हाँफने और खाँसने लगा। हम सब सन्नाटे में आ गये। यह पागल क्या बक रहा था, हम उस समय न समझ सके; पर उसके शब्दों की गूँज जीवन के किसी छिपे हुए पहलू पर जैसे अङ्गारे बरसाने लगी।

कारखाने में बैठ कर दिन भर वह चुपचाप अपना काम करता। उसे मनुष्यों से घृणा थी और उससे कुछ कहना पागल कुत्ते को छेड़ना था। उसका प्रत्येक शब्द आग और विष में बुझा होता। जान पड़ता कि संसार ने कटुता और तीखेपन का सब से बड़ा हिस्सा उसे बाँट दिया था। उसे किसी से प्रेम न था, किसी से लगाव न था। न वह किसी का था, न कोई उसका। फिर भी आज जब मैं इन बातों को सोचता हूँ तो भान होता है कि नायक संसार का सब से सच्चा और सबसे खरा आदमी था। वह मनुष्यों से इसलिए घृणा करता था कि उनसे प्रेम करना चाहता था।

कभी आसपास के गाँवों के किसान हमारी ओर आ निकलते और अपनी करुण-गाथा सुनाने लगते। नायक शून्य की ओर ताकते हुए अन्याय और अत्याचार की कहानियाँ सुना करता। उस

समय तक वह कुछ न कहता जब तक उत्पीड़ित किसान नन्हें बच्चों की यातनाओं का किस्सा न छेड़ता। तब नायक का आवेश असीम हो जाता। वह चीख उठता—"तुम सब मर जाओ, कट जाओ। मगर तुम्हें कौन-सा अधिकार है कि इन निर्बोध बच्चों को ऐसे नरक-सम संसार में झोंक दो ? तुम ही वह जड़ हो जिसके बल पर अत्याचार का वृक्ष लहलहाता है। जब तक तुम न मिटोगे, जुल्म न मिटेगा। अगर तुम पदाक्रान्त और अपमानित होकर जीना चाहते हो तो जियो, तुम्हें अख्तियार है। मगर अपने पापों की गठरी सन्तान पर लादने वाले तुम कौन होते हो ?" कि वह अपने आप को सम्बोधन करके बड़बड़ाने लगता—"सभ्यता को अभिमान है कि उसने पशु को मनुष्य बना दिया। मैंने कई बार सोचा है कि सुसभ्य होकर 'आदमी' नाम का जन्तु इन्सान नहीं, बल्कि शैतान बन गया है। जब देखता हूँ कि पशुओं में सन्ताप और विषमता की वह नग्न मूर्ति नहीं दीख पड़ती, अपने भाई बन्धुओं को वह विनाश के गढ़े में ढकेल कर सौ सौ पुश्त के लिए कोई सरञ्जाम नहीं करता, तो मैं अपने सिरजनहार को बार बार धिक्कारता हूँ कि मुझे मानव-योनि में क्यों जन्म दिया। तब मैं इस दुनिया को एक पागलखाना समझने लगता हूँ, जिसमें 'वर्तमान' एक अनदेखे भविष्य की सेवा के लिए यातनाओं में दम तोड़ रहा है और जब वह कराहता है तो 'अतीत' धर्म और समाज के चाबुकों से उस पर प्रहार करता रहता है।"

बालम के आदर सम्मान में नायक कोई कसर न उठा रखता। सन्ध्या समय उसे कन्धे पर बिठा कर वह पहाड़ियों पर चढ़ता और उसे न जाने कैसे-कैसे किस्से सुनाता। हम लोगों से वह कहता कि

बालम भावी जगत् का नागरिक है। पुराने समाज को तहस-नहस कर के वह एक नयी दुनिया बनायेगा।

अपने पिछले जीवन पर उसने विस्मृति का परदा खींच दिया था और हम कभी न मालूम कर सके कि वह कहाँ का रहने वाला है और किन घटनाओं ने उसकी विचार-धारा को इतना उत्तप्त कर दिया है। हमारे संस्कारों और विश्वासों पर उसकी बातें नश्तर का काम करतीं। उसके भाव, उसकी भाषा, उसका व्यक्तित्व—किसी से हमें ज़रा भी सम्पर्क न था।

अकेलेपन में औरत की याद हमें बहुत सताती और जब हम गँवार पतुरियों और कञ्जरियों को देखते तो बड़े अश्लील शब्दों में घंटों उनकी चर्चा करते। नायक किसी स्त्री के अपमान को न सह सकता था; विशेषतः बाजारू औरतों को वह बड़े सम्मान की दृष्टि से देखता। एक बार वह मुझसे कहने लगा—"कभी तुमने सोचा है कि यही वेश्यायें समाज की नैतिकता की लाज रखे हुए हैं? जानते हो, वे न होतीं तो नाक ऊँची कर के तुम सतीत्व का नाम भी न ले सकते थे? सभी सतियों और पतिव्रताओं को इन देवियों का आदर करना चाहिए। उनका गौरव इन्हीं के पतन से कायम है।"

उसका स्वास्थ्य बराबर खराब रहता। अपने खाने-पहनने की वह कोई परवाह न करता। उसे किसी ने झोपड़ी में झाड़ू देते न देखा, किसी ने कपड़े धोते न देखा। कभी वह अपनी रोटी न बनाता। अपने प्रति इस विद्रोह-भावना में कितनी करुणा छिपी हुई थी! वह कहता कि इस संसार में किसी भी सच्चे आदमी के लिए

केवल दो रास्ते हैं—या तो किसी को मार डाले और या खुद मर जाये। पर समाज की बुराइयों के लिए कोई एक आदमी दायी न था और न वह अपने-आप में इतना साहस पाता था कि पूरे संसार-चक्र को ही पलट दे। इसलिए स्वयं अपने आपको मृत्यु के समीप खींच कर वह दूसरों के पाप का प्रायश्चित कर रहा था! जब कभी मैं जवानी के मधुर सपने देखता और कल्पना जगत् में सफलता की सीढ़ियों पर चढ़ने का प्रयत्न करता तो वह कहने लगता कि 'सफलता के मार्ग में गालियों और तानों के काँटे बिछे हैं—अपमान और उपहास के अङ्गारे लोटते हैं। आत्म-सम्मान और सचाई की पट्टी आँखों पर चढ़ा कर इस दुर्गम वीथिका को तुम कैसे पार कर सकोगे?"

मुझे वह दिन हमेशा याद रहेगा। नायक अपनी झोपड़ी में दुलाई ओढ़े पड़ा हुआ था। मैं अभी कम्बल लपेटे गुड़गुड़ी को ठीक कर रहा था। कल दिन में वह हमारी बस्ती से चला जायेगा। उसकी बदली किसी दूसरी लाइन के कारखाने में हो गयी थी। एक झोली में अपने बरतन रख कर और दो तीन जोड़ी कपड़ों को बिछौने में लपेट कर वह सुबह चल खड़े होने की तैयारी कर चुका था। उससे बिछुड़ते हुए न जाने क्यों हृदय में टीस-सी लग रही थी।

धुंए की कमानियों को देखते हुए मैंने पूछा—"नायक भैया, जाते-जाते एक बात बताओगे?"

"पूछो।"

"जमाने-भर का विद्रोह तुममें कैसे समा गया? किस घटना

ने तुम पर इतना प्रभाव डाला कि ऐसे उग्र विचारक बन बैठे ?"

नायक माथे पर हाथ रख कर पल भर सोचता रहा। फिर चारपाई पर कुहनी टेक कर बैठ गया—

"मालूम नहीं कितने वर्ष बात गये। ऐसे तो भूखे रहने की मेरी आदत-सी हो गयी थी फिर भी उस दिन भूख के साथ मुझे पहली बार ठोकर भी मिली थी। मैं दो दिन का भूखा था और रात भर सो न सका था। हलवाइयों की दूकान में कैसे षटरस व्यञ्जन बन रहे थे। मैं शाम को देर तक उन्हें ताकता खड़ा था, तब तक जब तक कि एक भिखारी पर हलवाई के नौकर ने गर्म घी की कुछ बूँदें न उछाल दीं और वह चिल्ला कर भाग नहीं गया। मैं भी सहम कर दूर हट गया। इसी समय कोई मारवाड़ी मिठाई का एक वजनी पूड़ा लिये टैक्सी पर बैठने लगा। इस आस पर कि सम्भव है मुझे वह पूरी का एक टुकड़ा या एक-आध पैसा दे दे मैंने विनयपूर्वक आगे बढ़ कर बोझ उठा लेने की चेष्टा की। उसने क्रूरतापूर्वक सिर से पैर तक मुझे घूरा। मेरी फटी हुई धोती और उलझे हुए बालों पर निदय दृष्टि डाली और पान से भरे हुए मुँह का पीक मुझ पर थूक कर टैक्सी में बैठ गया। चेत तब आया जब हलवाई, उसके नौकरों और पथिकों ने एक-साथ हँसना शुरू किया। मैं अभी अपनी खोया हुई बुद्धि को सिमेट ही रहा था कि दूकान से जूठे पानी की एक कुलिया मुझ पर किसी ने फेंकी। इस पर दूसरा कहकहा पड़ा। और मैं अपने आँसुओं का बोझ पलकों पर उठाये वहाँ से चुपचाप खिसक गया।

"सोचना शुरू किया कि मैंने दुनियावालों का आख़िर क्या बिगाड़ा था। यदि मैं धरती पर भारभूत था तो मेरा क्या दोष ? मैंने प्रकृति से याचना न की थी कि मुझे 'भूख' दे और न समाज का ऐसा पाप किया था कि मुझे भूखा रखे, न ईश्वर से इस ममताहीन समाज में जन्म देने की प्रार्थना की थी। मैं अपने और अपनी बूढ़ी बीमार माँ के लिए दो मुट्ठी अन्न चाहता था और बस। मैं छै महीने से मकान वाले का किराया न दे सका था और चार दिन पहले उसके दरबान ने मेरा सामान फुटपाथ पर फेंक दिया था। मेरी हतभागी माँ लकवे के मारे न लाठी टेक कर चल सकती थी, न मुँह से बोल सकती थी। हृदयहीन दरबान ने उसे भी हाथ पकड़ कर उस अंधेरी, शीतमय कोठरी से निकाल दिया था। जब दरबानों ने मिल कर मुझे पीटना आरम्भ किया तो उसकी नीरव आँखें एक बार आकाश की ओर उठी थीं। मगर आकाश में क्या था ? वह भी अनुभूतिहीन था धनियों के हृदय के समान और उसके परे एक कपटमय शून्य था जिसे मेरी माँ ईश्वर समझती थी फुटपाथ पर चलने वाले बाबू विक्षिप्ता बूढ़ी के काँपते हुए शरीर और उसके पिटते हुए बेटे को देख कर हँसते चले जाते थे।

"भरी बरसात और पानी की बूंदाबांदी। समझ में न आता था कि फटे हुए बिछौने और बुढ़िया माँ को लिये हुए कहाँ जाऊँ। क्या देवालयों में आश्रय लूँ ? मगर उनके स्वर्ण-द्वारों के आगे मुझ जैसे सैकड़ों दर-दर के भिखारी पड़े रहते हैं और महन्तों व पण्डों के ये ऊँचे-ऊँचे मकान गर्वपूर्वक अपने कलश उठाये धनियों की हवेलियों से आँखें मिलाया करते हैं। उनका अर्थपूर्ण मौन दरिद्रों से कहा

करता है कि जी भर कर रो लो, क्योंकि तुम्हारे आँसू मोती बन जायेंगे जिनकी माला बना कर ईश्वर अपने गले में डाल लेगा।

"इसके बाद जीवन में क्रान्ति-सी हो गयी। मैं गम्भीरतापूर्वक सोचने लगा कि ऐसा क्यों होता है। जानते हो संसार का सब से भयानक, सबसे अधिक विद्रोहजनक शब्द कौन-सा है? क्यों'—जब तुम इसका पाठ करोगे तो देखोगे कि कहीं पाखण्ड, दम्भ और असत् का निशान न रह जायेगा। यही वह मन्त्र था जिसने झूठ और कपट के सारे तिलस्म ढा दिये। जब मनुष्य "क्यों कहने लगता है तो समझ लो कि वह अतीत की खाई से निकल कर भविष्य की ओर अभियान कर रहा है।"

× × ×

नायक हमेशा के लिए हमारे रङ्गमञ्च से ओझल हो गया। सुबह हमने देखा कि उसकी कुटिया खाली है और पिंजरे का द्वार खुला है। हमने आँखें फाड़-फाड़ कर दूर तक देखा, जहाँ जमीन-आसमान कल और आज के समान प्रभात लालिमा में मिल रहे थे। बहुत दूर नायक की बैलगाड़ी की उड़ी हुई धूल फिर मिट्टी में मिलने की कोशिश कर रही थी। मुझे मालूम पड़ने लगा, जैसे यही भविष्य की आशा-अबीर है, जिसे मिट्टी अपनी गहराइयों में छिपा लेना चाहती है। फिर सूरज चमका; उसकी किरणें रजकणों को ले उड़ीं और उन्हे प्रकाशमाला में गूँथ कर आकाश से रसातल तक एक डोरी तान दी।

कलकत्ता—जून १९३४

—:०:—

मौत !

बेटे ने बाप के मुँह पर कान रखकर सुना, अब भा धीमीधीमी-साँस चल रही थी। चेहरे पर मृत्यु-कालिमा दौड़ गयी थी, हाथ-पाँव ऐंठ रहे थे, नसें फाँसी की डोरियों के समान तिलमिला रही थीं—फिर भी दो दिन से लाख चेष्टा करने पर भी उसका दम न निकला था।

आठ वर्ष के उपरान्त वह पितृद्रोही पुत्र न जाने कहाँ से कल शाम को आ धमका था। उसने सन्तोषपूर्वक बूढ़े के निश्चल, स्पन्दनहीन शरीर को देखा जो लकवे से अकड़ गया था। अन्दर से दरवाजा बन्द कर के कालग्रस्त बूढ़े से दो-चार उखड़ी-उखड़ी बातें कर के उसने तिजोरी की चाबी ली और देर तक बैङ्क के कागजात और खाता बही को देखता रहा। फिर नोटों के पुलन्दों को जेब में रखकर बाहर से ताला लगा कर वह कहीं चला गया।

बूढ़े की आँखें कितनी सवाक् हो गयी थीं। मूक प्रार्थना और आर्द्र-करुणा के सोते उनसे उमड़े पड़ते थे। फिर भी वह कितना बेबस था, कितना अकेला! किसी को उसमे लेशमात्र समवेदना न थी; उसका एकलौता बेटा बेचैनी से उसके अवसान की प्रतीक्षा कर रहा था। उसे इतना भी धैर्य नही कि एक-दो दिन ठहर जाये। नहीं, वह उसके जीवन-सर्वस्व को आँखों के आगे से छीने

लिये जाता है और बूढ़ा प्राण-हीन मांस पिण्ड के समान देख कर भी कुछ नहीं कर सकता।

पड़ोस के कमरे से ग्रामोफोन की आवाज़ आ रही है। समस्त संसार विनोद-प्रमोद में अनुलिप्त है; किसी को किसी की चिन्ता नहीं। कियायेदार खुश हैं कि बूढ़ा मरे तो किराया कुछ कम हो। इस अराजकता से लाभ उठाकर कई-कई महीने का किराया लिये कुछ लोग भागने की तैयारी कर रहे हैं। बूढ़ा चाहता है कि अपने तेज नाखून उनके मांस में घुसेड़ दे और चिल्ला कर कहे—"रुपया दे दो।" पञ्जे दबा कर वे दरार से झांकते हैं और विषादपूर्वक कहते हैं—"अभी मरा नहीं है, साला!"

सिरहाने मोमबत्ती जल रही है। उसके प्रकाश में बूढ़े की आंखें कमरे में हिर-फिर सकती हैं। नीलाम की पुरानी घड़ी अपने सनातन मार्ग पर एक स्वर से 'टिक-टिक' का जप करती हुई चल रही है। उसके कांटे सिर उठा कर बूढ़े की ओर देखते हैं और जीवन के लक्ष्य पाकर, उदासीनतापूर्वक टनटनाते हुए, पुनः समय चक्र पर बैठ कर घूमने लगते हैं। मच्छर कान के पास भिनभिनाते हैं और घृणापूर्वक देह से उड़ कर, जैसे काल-परिधि बनाकर मौत के तराने अलापने लगते हैं। बूढ़े से उन्होंने रक्तशोषण का पाठ पढ़ा है और उसकी जरावस्था और मृत्युकाल से बेपरवाह हो कर, कभी अपने पैने डङ्क उसके लहू में डुबोते और फिर मस्त हो कर नाचने लगते हैं। बूढ़ा चाहता है कि उन्हें चुटकी में पीस डाले; लेकिन वह कितना अशक्त है, कितना लाचार!

सामने की टूटी हुई आलमारी पर मकड़ी ने एक जाला बुना है

जिसके ओर-छोर का पता नहीं मिलता। उसमें कितने कीड़े, कितने मच्छर और मक्खियाँ तड़प-तड़प कर ठण्डी पड़ गयी हैं—और मकड़ी अपने जाले के तारों को मजबूत करती जाती है। बूढ़े के विक्षिप्त मस्तिष्क मे यह विचार-तरङ्ग दौड़ जाती है कि किसी अज्ञात शक्ति ने संसार में रुपये का जाल बिछा दिया है और मनुष्य कीड़ों के समान उसमें फँसते हैं, छटपटाते हैं और घुट कर मर जाते हैं। फिर देखो, उस मकड़ी को छिपकली ने मुँह में दबाया और हड़प कर गयी। जाला अधूरा रह गया और हवा के झकोरे उसे अस्त-व्यस्त करने लगते हैं।

उसकी मौत से सब खुश हैं, कोई उदास नहीं। अकेली मोमबत्ती कभी कभी दार्शनिकों के समान जीवन की पहेलियों पर सिर हिला कर आँसू बहाती और अन्त में एक बार अपनी शिखा को उकसा कर बुझ जाती है। चारों ओर अन्धकार है, निपट अन्धकार—और बूढ़े की अन्तरात्मा में जैसे रौरव मचा हुआ है। वह प्रकाश चाहता है, उसे जल की आवश्यकता है, उसके गले में काँटे पड़ रहे हैं, जीभ ऐंठ रही है। वह चाहता है कि कोई उसके केशहीन शीश पर स्नेह के हाथ फेर कर सान्त्वना के शब्द कहे और उसकी शरीर-रूपी शृंखला से हल्के से प्राण निकाल ले। तब वह आराम से मर सकेगा और ईश्वर......!"

लेकिन मृत्यु-शय्या पर ही उसे ईश्वर की याद रह-रह कर क्यों आती है? अँधेरे में भी उसकी पैनी दृष्टि चाँदी के एक गोल टुकड़े को परख सकती है, जिस पर सड़क से ज्योति की एक क्षीण रेखा पड़ रही है। चाँदी का एक टुकड़ा! यही तो उसका ईश्वर है। इस

संसार में चाँदी और परलोक में तमाम चाँदी की खानों का मालिक—इनका समन्वय ही तो ईश्वर है!

हवा की झीनी-झीनी तरंगें प्रकाश-रेखा को इस प्रकार हिलाती हैं जैसे चित्रपट थर्रा रहा हो और बूढ़े की कल्पना जैसे फिल्मों की गड्डी है जिससे छाया मूर्तियों के प्रतिबिम्ब उस चमचमाते हुए टुकड़े पर चलने-फिरने लगते हैं। अपना पिछला जीवन इसी नन्हे से टुकड़े पर तैरता जान पड़ता है, जिसे वह न पा सकता है, न चबा सकता है।

बूढ़े ने आँखें बन्द कीं पर पलकों के भीतर उसी गोल टुकड़े पर उसे अपनी जीवन कहानी के पृष्ठ तेजी से उलटते दिखलायी दिये। उसकी पत्नी इठला कर, आँखें टेढ़ी करके नखरे से कहती है—"ऐ है! वह अँगूठी लाना तुम रोज भूल जाते हो? हमारी जान से, सौत की ही गोद कब तक भरे जाओगे? मुए घर में सुई का नाका तक तो नहीं रहा।" अपना जीवन इस स्त्री ने एक पानदान, कुछ गहनों और मिस्सी की एक पुड़िया के लिए बेच दिया है—और बच्चे? मगर यह तो दोनों की संयुक्त सम्पत्ति हैं।

बच्चों के लिए माँ का पेट किसी होटल से कम नहीं। चार यात्री होटल में आ जुटे, कुछ दिन रंगरेली रही और तीन परमधाम की ओर और एक किसी अज्ञात स्थान को रवाना हो गया।

बूढ़े की आँखें झपकने लगीं। पुतलियों और पलकों के बीच में एक लाल-सा तार—आदि अन्त-विहीन—उड़ने लगा, जो पिघले हुए रुपये से निकल कर पितापुत्र, पति-पत्नी, भाई-बहन—सब को सम्बन्ध-सूत्र में गूँथ रहा था। बूढ़े को भास हुआ कि खून के परनाले

बह रहे हैं जिनमें कोई अगम शक्ति उसी डोर को डुबोती और उसके फन्दे संसार पर फेंका करती है !

उसके मुँह से एक कराह निकल गयी और थूक उसकी ठोढ़ी से फिसल कर गरदन पर फैल गया—जिसमें असंख्य विषैले कीड़े बीमारी और मौत फैलाने के लिए तैर रहे थे। उसका गला जैसे रुंधने लगा। वह क्या देख रहा था ?—उस डोरी का सिरा एक बुढ़िया के हाथ में था जो कई वर्ष पहले बूढ़े के मकान की चौखट पर मर गयी थी !

बूढ़े ने किचकिचा कर आँखें बन्द कर लीं और उस घटना को भूलने के लिए इधर-उधर की बातें सोचने लगा। पर जैसे उसका दिमाग भी विद्रोह करने पर उतारू था और वह बुढ़िया अब उसी डोरे को लिये संसार के नकशे को पतङ्ग बना कर उड़ा रही थी !

वह बुढ़िया चाहती क्या है ? क्यों वह उसके अन्तिम समय को दुःखद स्मृतियों से असहनीय बना रही है ? बुढ़िया उसकी चौखट पर मरने क्यों आयी थी ?

मकान के आगे लोहे का एक गोल वृहत नल पड़ा हुआ था। जड़काले की एक सुबह में एक वस्त्रहीन स्त्री घसिटते हुए उस नल के भीतर से निकली और मकान के दालान पर गिर पड़ी। संसार में उसका कोई ठिकाना न था। जाड़े से बचने के लिए वह नल में घुस गयी थी जहाँ उसे निमोनिया हो गया था—और अब वह मर रही थी।

बूढ़े का स्मृति-पट खुल गया और उसने देखा कि कफ भरे हुए मुँह से वह बुढ़िया मूक-दृष्टि से किसी वस्तु की याचना कर रही है।

सड़क पर मोटरें आ-जा रही थीं; साफ सुथरे कपड़े पहने हुए धनी-मानी व्यक्ति उस फुटपाथ से गुजरते थे, मृतप्राय बुढ़िया को देख कर नाक पर रूमाल रखते और अपनी राह चले जाते थे। वह पानी की एक बूँद चाहती थी—और बस, पर कोई उसे पानी देने वाला भी न था। ऊपर कुहासा था जिसने सूर्यकिरणों को तिमिराच्छन्न कर दिया था और संसार ने जैसे विषाद की चादर ओढ़ ली थी।

बूढ़ा दूर से उस आश्रयहीना अधमरी भिखारिन को देख कर चौंक पड़ा था। कितनी जल्दी उसके चेहरे पर बुढ़ापे ने झुर्रियाँ ला दी थीं, जैसे प्रारब्ध ने अपनी आस्तीनों को चुना हो। अभी दस-बारह वर्ष पहले वह युवती थी, उसके छिन्नभिन्न वस्त्रों से सौन्दर्य यों छन-छन कर निकलता था, जैसे घास पात से वनपुष्प, और......

प्रत्येक शुक्रवार को वह भिखारियों को एक-एक पैसा खैरात में बाँटता था। घर के आँगन में लँगड़े, लूले, कोढ़ी और अन्धे भिखारियों की भीड़—जिन्हें कुछ मुसटण्डे फकीर पीछे ढकेल कर छीना-झपटी करते थे। और सब पर नौकरों के डण्डे पड़ते थे। बूढ़ा खुद अपने हाथ से पैसे बाँट कर अमर-यश लाभ करता था!

एक दिन जब आँगन साफ हो गया, सब भिखारी मकान-मालिक को स्वर्गप्राप्ति का आशीर्वाद देते हुए चले गये तो उसने देखा कि कोने में एक युवती मुरझायी हुई लता के समान सकुचाये खड़ी है। उसे अब तक पैसा न मिला था! बूढ़े ने—जो उस समय बूढ़ा न था—लोलुप दृष्टि से उसकी ओर घूर कर पूछा था—"जाती क्यों नहीं?"

वह जवान भिखारिन पत्थर की पुतली बनी खड़ी थी। फटे हुए

वस्त्रों में भी उसका सौकुमार्य सौन्दर्य से विश्रम्भालाप कर रहा था! वह ठगी-ठगी-सी ठिठकी खड़ी रही और बूढ़ा सीढ़ियों पर खड़े होकर उसे ऊपर चलने का सङ्केत करने लगा!

चाँदी का एक गोल टुकड़ा! यही तो दिया था उसने उस भिखारिन को! और एक रात पीछे एक रुपया देकर उसने कैसा जीवन-सुख लूटा!—अब वही अभागिनी फुटपाथ पर प्यासी मर रही थी और उसका पुराना प्रेमी उस पर उचटती हुई नजर डाल कर घर में घुस रहा था। रुपये के तराज़ू पर अब उसका कोई मोल न था, क्योंकि अब वह चुम्बन-आलिङ्गन किसी के योग्य नहीं थी! वह धरती पर भारभूत थी। यौवन ढल जाने के बाद उसका सतीत्व तीन कौड़ी का भी न रहा था!

बूढ़े के स्वप्नलोक में वही भिखारिन अब बुढ़िया हो गयी थी और और पिघलती चाँदी के तार को रुधिर से रंग कर सारे संसार को जकड़ रही थी!

गन्दे बिछौने पर तीन-चार खटमल रेंग रहे थे। जो उसके रस-हीन शरीर से छिटक कर अलग मन्त्रणा कर रहे थे। फिर गोया खून चूसने का पेशा छोड़ कर, अपनी जीविका का अन्यत्र प्रबन्ध करने के लिए वे चारपाई के पायों में घुस गये।

बूढ़े को एकाएक भास हुआ कि वह किसी पुराने मकान का खंडहर है, जो अब तब में गिरा चाहता है। उस मकान की दीवारें और खम्भे एक-एक करके गिर गये थे और धरातल काँप रहा था जो न जाने कब उसकी आधार-शिला को भी चूर्ण-विचूर्ण कर दे!

तब उसे पता चला कि उसकी मृत्यु से क्यों कोई दुखी नहीं है।

उसकी मौत सचमुच में रुपये की मौत थी—उस गोल पहिये की, जिस पर जीवन-रथ किसी अनिश्चित दुर्गम पथ पर घूमता हुआ, अन्त में पतन के गढ़े में गिर पड़ा था। साथ ही वह चक्का भी टूट गया था।

बूढ़े ने विस्फारित नेत्रों से देखा कि अँधेरे में मृत्यु-देवता अपने पञ्जे उसकी ओर फैला रहा है। उसके सिर्फ एक आँख है—वही ताक पर रखा हुआ चाँदी का टुकड़ा—जो पाशविकतापूर्वक कभी खुलती, कभी बन्द होती थी। बिछौने पर पड़े-पड़े आकाश का जो थोड़ा सा अंश दिखायी पड़ता था, उसमें केवल एक तारा जगमगा रहा था। बूढ़े की एक आँख रुपये पर थी, दूसरी उस तारे पर जो जीवन-प्रभात की सूचना दे रहा था...... !

बूढ़े की मौत के साथ रुपये की चमक भी मन्दा पड़ गयी!

कलकत्ता—जुलाई १६३४

प्रारब्ध

बन्द खिड़कियों की दरारों से छन-छन कर बाजों का कर्णभेदी रव और जय-जयकार का तुमुल-घोष मुझे बाध्य करता है कि उठूँ और देखूँ कि यह धूम कैसी है ?

नीचे नरमुण्ड ही नरमुण्ड दिखलाई देते हैं। मनुष्यों के ठट्ठ हाँपते, कुहनियों से रास्ता बनाते, पसीना बहाते, चिल्लाते जाते हैं। आगे-आगे बाजेवाले ढोल, मञ्जीरे और बिगुल के पञ्चकल्याणी स्वर से हर प्रकार की मधुरता के प्रति विद्रोह की घोषणा कर रहे हैं। बीच-बीच में बीन की बेसुरी तान लोगों की इस आतुरता और आवेग के प्रति विस्मय प्रकट कर उठती है। बाजे वाले गले की रगों को फुलाये, गालों को गोल-गप्पा बनाये विह्वल हो कर बेसुध हो रहे हैं। सूर्य की प्रखर किरणों से उत्तप्त होते हुए भी वे किसी पंचाग्नि-साधन-विरत साधु के समान आनन्द विभोर हैं और जब कभी गाँधी जी की प्रतिमा को अग्रगामी स्वयंसेवक ऊपर उठाता है तो वे दुगने उत्साह से बाजा बजाने लगते हैं। जब ढोल बिगड़ कर आवाज़ धीमी कर देता है, बीन से निकल कर ध्वनि-तरंग मनुष्य की मूर्खता को देख कर वाक्‌हीन सी हो जाती है, तब हरिजन बाजे वाले गला फाड़-फाड़ कर जय-ध्वनि करने लगते हैं। मैं समझ गया कि आज हरिजन-दिवस है और यह हरिजन-समूह गाँधी जी के दर्शन के लिए उनके निवास-स्थान को जा रहा है।

आगे-आगे कुछ तिलक धारी पण्डित अपनी मांस-भार से उभरी हुई तोंद को रेशमी चादरों में छिपाए मोटरों में बैठे हुए हैं। जान पड़ता है कि उनकी भारी-भरकम देहों में आत्म-प्रेम और अभिमान के सिवा कुछ नहीं है। किसी की चोटी धर्म-ध्वजा के समान लहराती है और किसी के तिलक में खून की लाली झलकती है। जब भक्तों का रेला उनकी चरण-रज लेने के लिए मोटर को घेर लेता है, और बन्द हवा जाल में फँसे पक्षी के समान छटपटाने लगती है, तो एक पुरोहित शहीदों की सी सूरत बना कर आनन्दातिरेक से आँखें बन्द करके मखमली गद्दों पर गिर पड़ता है। देश सेविकाओं के विजन और बाजू से बैठे हुए सेठ की धोती की हवा से उसकी आँखें खुल जाती हैं। बिलकुल भाव हीन नकली आँखों के समान स्थिर और अचल। मैंने एक फ्रेञ्च चित्रकार का बनाया हुआ कुबेर का चित्र देखा है, जिसमें वह एक नग्न पुरुष और वस्त्रहीना स्त्री के शरीर पर दोनों पैर रखे निर्निमेष नेत्रों से शून्य की ओर ताक रहा है। इस पुरोहित की आँखों में मैं ठीक वही भाव पाता हूँ। जब वह आशीष-दान के लिए दोनों हाथ उठाता है तो जान पड़ता है कि कोई गिद्ध शिकार पर झपटने के लिए पंख तौल रहा है। जब वह बातें करता है तो जान पड़ता है कि सत्य के हलाहल को पेट में उतार कर वह संसार को झूठ का अमृत दान कर रहा है। बीच-बीच में सेठ जी की ओर प्रेमभरी दृष्टि से देख वह रसगुल्लों और कचौरियों में सनी हुई आवाज़ से दरिद्रनारायण की जय कहता जाता है।

उनके पीछे मारवाड़ियों और बनियों का झुण्ड भगवान पर कृपा-भार लाद कर आत्म-श्रद्धा से चूर हो रहा है। रुपयों की आभा

से सब की आँखें चमकीली हो रही हैं। मन ही मन अपनी धर्म-सेवा को चाँदी की तराजू पर तौलते हुए वे गाँधी जी के आशीष का मूल्य बाजार भाव से लगा रहे हैं। अपनी गाढ़ी कमाई को हरिजनों के लिए मन्दिर बनवाने और कुएँ खुदवाने में खर्च करके उन्होंने स्वर्ग में अपने लिए कोठियाँ बनवा ली हैं। इस पूजा का सूद दर-सूद इसी संसार में अधिकाधिक लाभ के रूप में प्राप्त हो जायगा। एक देवता की पूजा करके, एक साथ खा कर और मेहतर को हरिजन के नाम से पुकार कर उन्होंने अछूतों के लिए आध्यात्मिक बन्धुत्व का रास्ता साफ कर दिया है। बनिया जी-ही-जी में सोच रहा है कि दलितोद्धार के साथ स्वदेशी उद्योग-धंधों की उन्नति किस हद तक संलग्न है और उसका लाभ उसी परिणाम के साथ बढ़ेगा या नहीं?

पीछे हरिजन नर-नारी उत्साहपूर्वक सेठों और उनके नेताओं की जय मनाते मैली आस्तीनों से पसीना पोंछते भागा-भाग चले जा रहे हैं। वे यह भी भूल गये हैं कि इन्हीं सेठों में उनके मालिक और साहूकार हैं। एक वह है जिसने पिछली हड़ताल के समय उन पर गोलियाँ चलवायी थीं, दूसरा वह है जिसने गाँव भर के किसानों को बेदख़ल कराया था। वह ज़मीदार भी है जिसकी चरणसेवा करते-करते वे भूख और मौत का आलिंगन कर रहे हैं। उनके साथ वे कथा-वाचक हैं, जो प्रतिदिन स्वामिभक्ति और पर-सेवा का पाठ उन्हें पढ़ाते हैं और प्रत्येक दुर्बोध प्रश्न को भाग्य और ईश्वरेच्छा के हवाले कर देते हैं। नन्हू पासी का जी चाह रहा है कि डा० रामचरण आदेश दें तो जलती आग में कूद पड़ूँ। वह भूल गया है कि पिछले दिन जब वह अपने मरणासन्न पुत्र को कम्बल में लपेट कर उनके

द्वार पर गया था तो डाक्टर साहब ने, बिना नगद-नारायण के दर्शन किये, उसे देखने से भी इन्कार कर दिया था। अब वही डाक्टर रामचरण पान से चोंच लाल किए दलितोद्धार पर धुँआधार भाषण फटकार रहे हैं।

सुमेर मोची शुकुलजी की स्थूलकाय देह को खींचने में चोटी का ज़ोर लगा रहा है, जो धरती पर पाप-भार के समान पालकी पर लदी हुई है। इन वकील साहब ने भाई से मुकदमेबाज़ी कराके दोनों का सत्यानाश करा दिया, फिर भी सुमेर बैल के समान उन्हें खींचे लिये जा रहा है। डाक्टर और वकील साहब मन ही मन हिसाब लगा रहे हैं कि यह स्वाँग उनकी प्रेक्टिस को चमकाने में किस हद तक सहायक होगा।

यह भिखमंगा देवता की मूर्ति के आगे नत-मस्तक क्यों हो रहा है? देवता और मनुष्य ने ऐसी कौन सी चीज़ दी है, जिसके लिए वह उनका कृतज्ञ है? वह इस मूर्ति और ध्वजा को पैरों के नीचे रौंद क्यों नहीं डालता? प्रतिहिंसा, क्रोध और विद्रोह उसका जन्मगत अधिकार है। वह पुकार कर क्यों नहीं कह देता कि पुण्य और दक्षिणा के नाम पर धर्म को रिश्वत देने वालो! झूठे हैं तुम्हारे दावे! हरिजनों के लिए कुएँ खोद कर तुम उनकी जागृति और चेतना की समाधि बना रहे हो। उनके लिए मन्दिर बना कर तुम उस देवता की प्रतिमा स्थापित कर रहे हो, जो उन्हें हमेशा पददलित और अपमानित रखना चाहता है। उन्हें तुम स्वामि-भक्ति, ईश्वर-भक्ति और धर्म-भक्ति की शिक्षा देने के लिए स्कूल खोल रहे हो।

मगर क्या बेकारों, भिखमंगों और दलितों के होते हुए तुम दलितोद्धार कर सकते हो?

मगर वह भिखारी कुछ नहीं कहता। बनिये का फेंका हुआ पैसा उठा कर वह उसे कोटिशः धन्यवाद देता हुआ भाग्य को सराहता और फिर कूड़े में खाने की सामग्री ढूंढ़ने में लग जाता है इस जुलूस में मैं साफ तौर पर दो जातियों को देखता हूँ। उनकी संस्कृति, वेष भूषा, भाषा सब कुछ अलग है, मगर इन नंगे मज़दूरों की आत्मानुभूति क्या हुई? जिस मन्दिर के शिलारोपण के लिए गाँधी जी अभी पधारेंगे, उसमें ये लोग अपना वासस्थान क्यों नहीं बनाना चाहते? उनकी झोपड़ियों में गर्मी आग है, वर्षा नरक कुण्ड है, सर्दी मृत्यु का आलिंगन है। फिर इन ऊँची हवेलियों में रहने की आकाक्षा ये क्यों नहीं करते? अपनी सारी अपत्तियों को, कर्म की लेखनी के हवाले करके, वे स्वभावानुसार अपनी दासवृत्ति पर क्यों चलने लगते हैं?

कुछ बूढ़े बुद्धिजीवियों के साथ डा० हनुमानदास स्वलिखित पोथी बगल में दाबे नज़र आते हैं। मनु की व्यवस्था पर वे धाराप्रवाह भाषण कर रहे हैं। सिर, पेट, हाथ और पैर शरीर के चार अंग हैं। इसी प्रकार समाज के जीवन के लिए चार वर्ण आवश्यक हैं। डाक्टर साहब की युक्ति को शिरोधार्य करके भक्त-सम्प्रदाय चिल्ला उठता है, 'वर्णाश्रम धर्म अमर हो!'

सबके पीछे पुराने पापियों की भीड़ राम-लीला के गीत गाती हुई चली आ रही है। वाणिज्य-व्यापार, नौकरी से अवसर प्राप्त करके कञ्चन-कामनी के सुख-सम्भोग से थक कर लूट (जिसे

सभ्य शब्दों में नफा कहिए) में समर्थ न रहने के कारण अब इन धर्मावतारों के मन में एक साथ पाप और पुण्य का उदय हुआ है। अब तक हृदय में शून्य था, अनन्त शून्य! अब बुढ़ापे में मृत्युभय को, उसके पाप के बही खाते को और उसके पुण्य की रोकड़ को सामने रख दिया है। सुशिक्षित होने के नाते बूढ़े हरिजनों के मन्दिर में प्रवेश के अधिकार को मानते हैं। मगर इन हरिजनों को क्या हुआ है जो उन्हीं मन्दिरों में घुसते हुए झिझकते हैं, जिनका उन्होंने निर्माण किया है? धर्म-मर्यादा!... मैं खिड़की बन्द करके चारपाई पर बैठ जाता हूँ। धर्म, भाग्य, ईश्वर? दिन में कितनी बार शब्दों को मैं सुना करता हूं। दरिद्र अज्ञानवश और धनी पाखण्डवश कितनी बार इनकी पुनरावृत्ति करते हैं। ये तीनों शब्द मुझे संसार के अज्ञान और बुराइयों के प्रतीक जान पड़ते हैं। मुझे सिपाही के खून, मज़दूरों के पसीने और भिखारी के आँसुओं में प्रारब्ध हँसता जान पड़ता है। पुरोहितों के छल-कपट, सेठों की निर्ममता और धनी मानियों के अत्याचार में ईश्वर की मुस्कराहट दिखाई देती है।

कोई धनमाद में मस्त हैं, कोई शासनमद में, कोई अज्ञानमद में। क्या अज्ञान का भी कोई नशा होता है? हाँ, हाँ, बड़ा गहरा। आप उसे क्या कहेंगे जो अपने माल की चोरी होते हुए देख कर भी ईश्वर-भजन से विमुख नहीं होता; जो अपनी स्त्री को क्षय रोग से और बच्चों को हैज़े से मरता देख कर उनका इलाज कराने में असमर्थ रहता है और फिर भी भाग्य का दामन नहीं छोड़ता; उसको क्या कहियेगा जिसकी चरम आकांक्षा यही होती है कि काश, पशु

या पक्षी होता, किसी का गुलाम न होता; उसे क्या कहियेगा जो जीवन के लिए नहीं मरण के लिए, इहलोक के लिए नहीं परलोक के लिए लड़ता है? उसे क्या कहियेगा जो पत्थर के एक ढेर के लिए; जिसे वह मन्दिर या मसजिद कहता है, अपने जानदार भाइयों को बेजान कर देता है, जिन्हें वह कभी नहीं जिला सकता।

यही अज्ञानमद है, यही धर्म का नशा है, 'यही मानव जाति की अफीम है।'

———

मेरी डायरी के कुछ पृष्ठ

कलकत्ता, १७ जुलाई

मैं जिस मकान में रहता हूं, उसके ठीक सामने एक 'प्रोलितेरियन' होटल है। जब से मैं इस कमरे में रहने लगा हूँ, जाने क्यों मेरा सिर भारी-सा मालूम होता है, जैसे कोई मेरे भेजे पर नाखून से निरन्तर प्रहार करता हो, या ठण्डे सीसे की एक-एक बूंद उसमें टपकायी जाती हो। अभी सो कर उठने पर पता चला कि यह अकारण व्यथा कैसे आरम्भ हुई। होटल के तन्दूर में प्रातःकाल से लेकर रात बीते तक खमीरी रोटियां सेंकी जाती हैं। तन्दूर-वाले के हाथ इतने मंजे हुए हैं कि वह गुंधे हुए आटे का एक विशेष परिमाण नोचता और उसे तवे पर एक खास ताल के साथ बजाता और फिर एक धमाके के साथ तन्दूर में थोप देता है। पहले आटे की लोई पर तीन थपकियां जोर से और फिर एक धीरे से! दिन में १७६० बार यही डफली बजा करती है और यह भैरव ताल मेरे दिमाग में इस प्रकार रम गया है कि हमेशा कान उसकी प्रतिध्वनि से गूंजा करते हैं। रोटी पर मुक्कों की आवाज वर्ग-युद्ध की थ्योरी के समान दिमाग के सूने आसमान में कड़कती रहती है।

शाम होगी और भिखारियों की भीड़ रोटी बाँटनेवालों की जय मनाने के लिए कन्धे छीलने लगेगी। कल स्वयं मुझे एक हृदयवेधक अनुभव हुआ। जब मैं पथिकों के धक्कों से पतलून की क्रीज बचाता

हुआ होटल के आगे पहुँचा तो एक भिखमङ्गे ने मेरी बाँह पकड़ ली। मेरी टुटपुंजिया (Pettybourgeois) अन्तरात्मा रोष से सजग हो उठी। मैं उसे धकियानेवाला ही था कि हाथ ज्यों के त्यों रह गये। उसके हाथों को लकवा मार गया था और वे घास के समान थरथरा रहे थे। उसकी बाँह में रोटी के टुकड़े दबे हुए थे, पर उसमें इतनी भी सकत न थी कि खुद उन्हें खा सकता। नाक से रेमट बह कर दाढ़ी-मूंछों के बालों में लिपट गया था। क्या मनुष्य इससे भी अधिक असहाय हो सकता है? वह केवल इतना चाहता था कि उसकी रोटियाँ कोई उसे खिला दे। उसी सड़क पर न जाने कितने लोग सांड़ों कुत्तों, बिल्लियों और बटेरों का दुलार करते थे—पर मनुष्य के दुःख-दर्द पर किसी की आंख नहीं। जब मैं उसके मुंह में कौर भरने लगा तो वह वनपशुओं के समान बिलबिलाकर बिना चबाये उन्हें निगलने लगा और उसकी आंखों से आंसू मेरी उँगलियों पर टपकने लगे। वहाँ कुछ परिचित विस्मय और घृणा के साथ दूर खड़े मेरी हंसी उड़ा रहे थे। आह शोपेनहार और उसके हृदयहीन, भावहीन दुटङ्गे जानवर!

२१ जुलाई

मैं अपने दिल को कितना समझाता हूँ कि भलेमानस, तू जिस आदमियत को ढूंढ़ता है वह इस संसार की वस्तु नहीं। स्व-चेतनता का अब यह हाल है कि नाक हमेशा अन्याय और अत्याचार की बू सूँघती है आँखें समाज की बुराइयां ढूंढ़ने के सिवा कुछ नहीं करतीं और ज़बान वा कलम बराबर प्रतिवाद और प्रतिकार के मौके ढूंढ़ती है। मैं कोई समाज का ठेकेदार या खुदाई

फौजदार हूं ? क्यों न आज उमर खैयाम की रुबाइयात खरीदूं और 'मै' के नशे में शराबोर हो जाऊं !

आज फिर दारुण मानसिक यातना ! भोर में जब मैं स्टेशन से लौटा तो सेठों की हवेलियां वेश्याओं के समान स्वप्ननिरत थीं। केवल अलसाये हुए इक्के-दुक्के सांड़ और उनकी जुगाली करती हुई जीभों को ताकनेवाले, फुट-पाथ पर लेटे हुए भिखारी भुवनभास्कर का झण्डा लहरा रहे थे। सेठानियां लठबन्द दरबानों की छत्र छाया में नन्दी देवता को पकवानों का भोग लगाती जाती थीं। किसी भिखारी की जो शामत आयी तो उसने एक अघाये हुए नयनमुँदे सांड़ के आगे से पत्तल सरका ली। साँड़ तो अपने आसन से हिला तक नहीं, मगर दरबान ने ताबड़तोड़ कई लठियाँ भिखारी पर बरसा दीं। उस बेचारे ने मुंह में इतनी पूरियाँ ठूंस ली थीं कि चिल्ला भी न सका। वह उस कुत्ते से अधिक चालाक था जो पानी में मुंह की रोटी की परछाईं देख कर उस पर झपटा और अपनी जमा भी गंवा आया। यही नहीं, गङ्गापुत्रों की ओर क्षमाप्रार्थियों के समान देख कर कीचड़ से वह उन पूरियों को उठाने लगा जो इस छीना-झपटी में गिर गयी थीं।

मैं सोचता हूँ कि मनुष्य की आत्महीनता की कोई सीमा भी है। किसी की मौत उसके लिए तमाशे से कम नहीं। नीलाम होनेवाले लावारिस घोड़े के खुर, अयाल और पुट्ठों के समान, लोग मरनेवाले के पाप-पुण्य और रुपयों-पैसों का हिसाब लगाते और फिर सिगरेट की एक फूंक या पान की पीक की तरह एक को ईश्वर और दूसरे को नरक के हवाले करके सो जाते हैं। और अगर वे खुद दूसरे दिन

न उठे ! तो उसके भाई बन्धु उससे ठीक ऐसा ही व्यवहार करेंगे !

४ अगस्त

फिर रेल का सफर ! मेरा जीवन ड्राइंगमास्टर की परकार या पटवारी की जरीब के समान हो गया है, पर न कहीं सोने-रूपे की बारिश होती है, न हीरे-मोती के खजाने मिलते हैं और मैं इनकी खोज में भागा-भागा अपनी दुरावस्था को और भी दयनीय बनाता जाता हूं ।

अब तो मां का पेट रेल का डिब्बा या होटल हो गया है, जिसमें भाई-बहन मुसाफिरों के समान कुछ समय के लिए जमा होते और फिर अपनी अपनी राह लेते हैं। केवल यही एक स्थान है जो हमारे देश में अन्तर्जातीय मेल-मिलाप और अछूतोद्धार का प्रतीक है। यहीं हिन्दू-मुसलमान मिलते हैं, यहीं छूत-अछूत का झगड़ा मिटता है, यहीं परदे की कठोरता कम होती है, यहीं लिङ्ग-समानता का विज्ञापन होता है ! धन्य है भारतीय रेल का डब्बा और उसकी महिमा !

पूरे १४ घण्टे हो गये और इन चटियल मैदानों को ताकते-ताकते आँखें आ गयीं। क्या हुई वह 'शस्य श्यामल भारत भूमि' और पहाड़ों और नदियों का रमणीय देश ! पेशावर से लेकर कलकत्ता और यहाँ से लेकर कराची तक सपाट, खेतों और मैदानों के सिवा कहीं कुछ नहीं । "स्वर्गादपि गरीयसी !'—कैसे कहूँ ! 'हिन्दुस्तान जन्नतनिशान !'—कैसे मान लूं !

विशाल-भारत की इस छोटी-सी आवृत्ति में दो चीजें सबसे दिलचस्प हैं। एक तो वह बोहरा, जो तकिये के खाली खोल में रुपयों की

थैली भरे उसे सिरहाने रखे आंखें बन्द किये है। दूसरे यह लालाजी, जो अपनी धर्मपत्नी को बेञ्च पर सुला कर स्वयं नीचे सो रहे हैं। थोड़ी-थोड़ी देर में वे सिर निकाल कर देख लेते हैं कि श्रीमतीजी सकुशल हैं या नहीं, और फिर वही खर्राटे का चौताला!

पहट और लालाजी के चिरञ्जीव के रोने की आवाज़! ललाइन ने अपने पयोधर उसके मुंह से लगाये, फिर भी वह अभागा चुप न हुआ। तङ्ग आकर मां ने उसे धमकाने के लिए कहा—"पीता है तो पी, नहीं इन बाबूजी को दे दूंगी!"

क्या मैं इतना भूखा मालूम होने लगा हूं?

अलीगढ़, ३ सितम्बर

मैं अपने नये घर में उठ आया हूँ। दो दिन में ही मेरे कमरे के कोने में कूड़ा उसी प्रकार जमा हो गया है, जैसे प्रिया के शयन-कक्ष में स्वदेशी कवि की हृदय-भस्म! पाप-भार से दबे हुए वृद्ध शरीर के समान मेरी चारपाई जर्जर है। उधरवाले कमरे में मेरे एक मित्र रहते हैं, जिनकी कुर्सी और मेज़ से क्रान्ति व विद्रोह की चिनगारियाँ निकला करती हैं। उनके विचारों के केन्द्र केवल दो हैं—एक तो वह नयी दुनिया जो भविष्य के गर्भ में है, दूसरे वह बच्चा जो उनकी मादम के गर्भ में विकास के विभिन्न स्टेजों से गुज़र रहा है। प्रातःकाल जब मक्खन और अण्डों से तरल होकर वाग्धारा क्रान्ति की घाटियों में बहने लगती है और साथ-साथ अपने क्रान्तिकुमार की कल्पना दिल में गुदगुदी करने लगती है तो मेरे लिये यह समझना कठिन हो जाता है कि दोनों में किस का ध्यान उनके गले में मछली का कांटा बन गया है।

और उनकी पत्नी ?—आह, क्रान्तिकारी की जोरू का जीवन कैसा विदग्ध, कैसा जलने-जलाने वाला होता है। वह बेचारी इस सोच में घुली जाती है कि उसके पतिदेव जिस नये स्वर्ग को सिरजने वाले हैं उसमें उसकी 'रचना' का क्या स्थान होगा। जब कभी मैं समानता, सन्तति-निग्रह और महिला-समाज के क्रान्ति-विरोध पर कुछ कहता हूँ तो उनकी भाव-भङ्गी वीरा फिगनर और रोज़ा लक्ज़ूमबर्ग की-सी हो जाती है। तब मुझे महसूस होता है कि इस देश में वर्ग-युद्ध क्रान्ति बनाम श्रीमती क्रान्तिकारी का रूप धारण करेगा।

११ सितम्बर

आज ठाकुर....से भेंट हुई। पक्के राष्ट्रवादी, जेलयात्री और आध्यात्मिकता के रसिया हैं। मकान की मरम्मत हो रही है, अपनी निगरानी में मजदूरों से काम लेने के लिए सुबह से शाम तक बैठक में जमे मोटी ऐनक के भीतर से उनकी गति-विधि का निरीक्षण करते हैं। आज जमींदारी के कुछ किसान पावना चुकाने भी आये हैं। मुझे देखते ही उन्होंने हाथों-हाथ लिया और बातचीत का सिलसिला शुरू हो गया। नेपोलियन और हैदरअली अगर एक साथ कई काम कर सकते थे तो यह महोदय कम से कम एक साथ किसान, मजदूर और आत्मा से तो निबट सकते हैं।

वे—जी हाँ, आप ऐसे भयङ्कर भौतिकवादी के लिए कबीर की साखी को समझना कठिन है। कहिये तो सही, काया को माया न कहें तो क्या कहें और—अरे बिसाखू, कम्बख्त डेढ़ घण्टा देर से आ रहा है ?—ऐं—बच्चे के लिए दवा लेने गया था! हमने तो उसे पैदा नहीं किया। मुंशीजी एक पहर की मज़दूरी काट लीजियेगा!—

जी हाँ, और मौलाना रूम ने भी अपनी मसनवी में एक समानार्थक (थोड़ी देर बाद) शेर कहा है, सुनिये—।

साहब, अहिंसा के सिद्धान्त पर ठण्डे दिल से तो सोचिये। यही मानव-धर्म है, यही मनुष्य और पशु का वास्तविक भेद है। जिसे आप जिला नहीं सकते, उसे मारने का अधिकार—सुनो जी बोधराम, तुम्हारे ज़िम्मे जो तीसरे साल का १६) आता था, वह अब सब मिला कर ३३॥≈)॥ हो गया। चलो ॥≈) छोड़े देते हैं अगर पूरा भुगतान अभी कर दो।—क्या कहा?—जमीन बन्धक रख कर लें, तो हम पर क्या अहसान किया!—लड़के का क्रिया-कर्म? तो बाबा हमने इसका कुछ ठेका ले लिया है—न खाओ सिर हमारा!—जी हाँ, यही है महात्माजी की शिक्षा.......।

मेरा सिर घूमने लगा, मैं भागा। आत्मा के साथ दरिद्रों का शोषण और अहिंसा के साथ किसानों की हिंसा मुझे अनुलिप्त दिखाई देने लगी।

२६ सितम्बर

यह वातावरण कितना ज़हरीला है, इसमें मेरा दम घुटा जाता है, जैसे इसके नागपाश में मेरे व्यक्तित्व का खून जल रहा है। मेरा शरीर ही रुग्ण नहीं, मेरी आत्मा भी रुग्ण हो गयी है। यह स्थान गोबर का ढेर है, जिसमें शिक्षा के प्रकाश-पुञ्ज से कीड़ों के समान इतने आदमी बिलबिला रहे हैं। इनके बीच मेरी आत्मा जुगनू के समान कभी जलती और कभी बुझ जाती है। मैं यहाँ से भागना चाहता हूँ, लेकिन संसार मेरे लिए या तो बहुत तङ्ग है या इतना बड़ा कि उसके द्वन्द्व में घुन के समान मैं पिस रहा हूं।

कुछ दिनों से फिर हृदय की धड़कन शुरू हो गयी है। कल पढ़ते-पढ़ते एकाएक मेरे हाथ थर्राने लगे, दिल पङ्खे के समान घूमने लगा, कान भाँय-भाँय करने लगे, मुंह रक्त-प्रवाह की तेजी से लाल हो गया। मैंने साँस रोक ली कि कहीं इस कम्प-विकम्प में रुक ही न जाये। ऐसा दौरा कभी न हुआ था। फिर प्रतिक्रिया से हाथ-पैर निढाल हो गये—अँधेरा और सन्नाटा!

३० सितम्बर

क्या मनुष्य रोटी कमाने और खानेवाले जानवर के सिवा कुछ नहीं? क्या यही जीवन का अथ और इति है, क्या यही इस शब्द का अन्तिम अर्थ है? अगर काम करने और जीने में कोई भेद नहीं तो मैं हरगिज़ काम न करूंगा क्यों न इन पक्षियों के कूजन और समीर के विलाप को सुनते हुए निश्चल पड़ा रहूँ और इसी प्रकार मर जाऊं। संसार को मेरे जीवन की ज़रूरत नहीं तो मुझे इस संसार की क्या आवश्यकता!

१६ अक्टूबर

अब मैं इस अग्नि-मन्दिर में अधिक समय तक न रहूँगा। नाव छोड़ कर वर्फ के कृत्रिम द्वीप में उतरनेवाले अनाड़ी नाविक के समान मैं भविष्य की चिन्ता किये बिना यहाँ से जा रहा हूँ। सम्भव है यह द्वीप भू-तत्त्व के किसी नियम के अनुसार जम जाये या मेरे एस० ओ० एस० को सुन कर कोई जीवन-नौका इधर निकल आये।

इस स्थान से तीव्र घृणा होते हुए भी, एक घण्टे के भीतर मुझे अपने निश्चय पर दुःख भी होने लगा है। एक घण्टा पहले तक

मेरा अनुभूतिशील हृदय सर्वथा प्रेमहीन था— एक ऐसी नदी, जिसमें पानी की बूँद नहीं ; एक ऐसा आकाश, जिसमें चाँद थे न तारे ; एक ऐसी मरुभूमि, जिसमें न रेत थी न बगोले। शून्य था— अनन्त शून्य !

क्यों एक घण्टे के भीतर उसने मेरे जीवन की धारा पलट दी। क्यों मेरे जीवन में कपट की सृष्टि करके उससे मोह उत्पन्न कर दिया—और कपट भी प्रेम का ! ईश्वर, आत्मा और नैतिकता से भी बड़ा कपट ! क्यों उसने मुझे अपने नन्हें-से पत्र से यह अमिट विश्वास दिला दिया कि संसार में किसी को मुझसे भी प्रेम है और मेरे कारण मेरे विचारों से भी प्रेम !

कितने घण्टों से मैं इस अन्तर्द्वन्द्व में फँसा हुआ हूं। अपने विषय में मैं कुछ न सोचता था। एक तिनके के समान हालात के बहाव में चला जाता था। क्यों उसने 'मैं' की छिपी हुई आग को कुरेद दिया ? क्यों उस अंधेरे कुएँ में झांकने के लिए मुझे बाध्य कर दिया, जिसमें स्वप्न-जाल और पापों की अगम झाईं के सिवा कुछ नहीं ? लेकिन मैं उसे कैसे ठुकरा दूँ, आँसुओं से लिखी हुई इन लकीरों को क्योंकर बिसार दूँ जिनमें निष्पाप, निष्कलङ्क कौमार्य पाप और कलङ्क को धोने के लिए मेरा सहारा बन रहा है !

<u>बम्बई, २८ अक्टूबर</u>

बम्बई में ! सचमुच मैं इस महानगरी की तादाद एक अदद से बढ़ा रहा हूँ। क्यों आया मैं यहाँ ? क्या मालूम क्या करूँगा मैं यहाँ ? नहीं जानता। बस जेब में प्रेस-प्रतिनिधि का

पास लिये उद्देश्यहीन-सा अङ्कहीन शून्य के समान कांग्रेस-नगर में डोला करता हूँ।

कितना शानदार है यह मेला, जहाँ लोग अपने दिमाग़ को रिहन रख कर दूसरों के विचार खरीदा करते हैं। भीड़ में गुम होने वाले बच्चे के समान हर आदमी ठगा-ठगा-सा कर्म-मार्ग की खोज में हैरान है। लोगों के आचार-विचार जंचे-तुले हैं कि जान पड़ता है किसी बाजीगर ने गुलाबो सिताबो की सहेलियों को नौटङ्की रचाने के लिए रङ्गमञ्च पर खड़ा कर दिया है। कांग्रेस-नगर से कुछ हट कर प्रलयङ्कर समुद्र हिलोरें मार रहा है। दूसरी ओर मज़दूरों के जत्थे मशीन की चरखी के समान तिलमिला रहे हैं। बीच में वरदीधारी पुलिस का प्राचीर न हो तो समुद्र का हल्ला इस खेल को शायद पल-भर में तहस-नहस कर दे।

वातावरण के इस दम घोटनेवाले दबाव को सहनीय बनाने के लिए परिहास का केवल एक छींटा पल्ले पड़ा। मैंने किसी से पूछा, डा०...कहाँ मिलेंगे? जवाब मिला, राजेन बाबू के डेरे में कांग्रेस ठहरी हुई है, शायद वहीं हों। यह बात वैसी ही थी जो किसी बुढ़िया ने एक दूसरे मौके पर कही थी। किसी अंगरेज को घोड़े पर जाते देख कर उसने पड़ोसिन से कहा—"आज सरकार घोड़े पर सवार जा रही थी!"

२४ अक्टूबर

कौन-सी वह तीन चीज़ें हैं जो मुझे ईश्वर की सुरुचि का कायल बनाने लगी हैं?—समुद्र, नारी और टोमेटो! एक विशाल

है, दूसरा अबूझ पहेली है, तीसरे में पञ्जाबी खोञ्चे के '१२ स्वादों' का मज़ा है !

समुद्र—

मेरे सामने आँसुओं की अनगिनत बूंदें थिरक रही हैं और हर बूंद में शोक और विषाद की मौजें सिसक रही हैं।

मुझे इन ख़ामोश पहाड़ियों से आनेवाली प्रतिध्वनि में, बादलों की डगमगाहट में, हवा के झोंकों की तकरार में और समुद्र के हुलस-हुलस कर तड़पने में - विलाप और क्रन्दन को आवाज़ें सुनाई देती हैं।

यह नौका मेरे दिल की तरह बेचैन है, ये तारे मेरे भावों के समान आकुल हैं, यह चाँद मेरे भविष्य के समान धुंधला है।

तट समुद्र की असीमता को परिमित करना चाहता है, कुहासा चाँदनी को शृंङ्खलाबद्ध कर रहा है और मैं आप अपनी सहायता का बन्दी बन गया हूं।

मेरे दुर्भाग्य के समान अंधेरा बढ़ता जाता है, मेरे जीवन के सूनेपन के समान सन्नाटा बढ़ता जाता है, दिल की धड़कन के समान समुद्र की व्याकुलता बढ़ती जाती है।

प्रकृति की असमता और समाज की पाशविकता के विरुद्ध मुझे चारों ओर से विद्रोह और प्रतिवाद की आवाज़ें सुनाई देती हैं। फूल का मुरझाना यौवन की नश्वरता के विरुद्ध विद्रोह है और सौन्दर्य का बिजली के समान तड़प कर बुझ जाना प्रकृति की असुन्दरता के विरुद्ध प्रतिवाद ! आँसू इस रोष का सङ्केत है और समुद्र—अश्रु-सागर है !

समुद्र ! केवल तेरा अस्तित्व ही प्रकृति के आगे मनुष्य को नतमस्तक कर सकता था। मनुष्य ! तेरी अमर आकुलता क्रान्ति की जननी है।

१३ नवम्बर

रुपये पर शासकों की मोहर क्यों दी जाती है? क्यों नहीं साक्षात् भगवान् की छवि इस पर अङ्कित कर दी जाती। यही मेरुदण्ड है, यही शेषनाग का मस्तक है, यही अल्लाह मियाँ का सिंहासन है। छत्तीसों राग-रागनियों की मधुरता रुपये की झनकार में सिमट आयी है, सत्य के सारे प्रयोगों का अर्थ है—भज कल्दारम् ! नैतिकता और धर्म की आत्मा पिघली हुई चाँदी में समा गयी है। आइन्सटीन क्यों कहता है कि ब्रह्माण्ड विद्युत्-कणों का ढेर है; वह क्यों नहीं कहता कि यह विश्व रुपया और रुपया पैदा करने वालों का अखाड़ा है। ईश्वर चाँदी की खानों का मालिक और पूंजीपति उसके दलाल हैं। तूर की पहाड़ी पर मूसा किसकी प्रभा से चौंधिया कर अचेत हो गया था? ईश्वर के तेज़ से या रुपये की झलक से !

लाहौर, २४ नवम्बर

मेरे अन्तर्संसार में बहुत दिनों से संग्राम मचा हुआ है। आदर्श और अपनेपन के बीच में त्रिशङ्कु के समान लटका हुआ हूं। वातावरण और व्यक्तित्व का यह द्वन्द्व मेरे जीवन-रस को बूंद-बूंद करके सुखा रहा है। मुझे गर्व होना चाहिए कि इस विषैले वायु-मण्डल में मेरी सांस का भी दम घुट रहा है। समाज में सर्वप्रिय होने का अर्थ है, उसके नियमों और अनुशासन को

स्वीकार कर लेना। मैं प्रसन्न हूं कि हर जगह अपने को अप्रिय बना सकता हूं।

एक-एक करके सब ने मेरा साथ छोड़ दिया है, पर किसी का साहस नहीं कि मुझसे घृणा करे। तङ्ग चाहे वे आ जायें, पर मेरा अपमान करने का नैतिक साहस इनमें नहीं। आत्मग्लानि जोंक के समान इनके प्राणों से चिपकी हुई है।

मेरे बाह्य संसार में ही नहीं, अन्तर्जगत् में भी गजब का अकेलापन है। अभी से कलम हाथ से छूट रही है; कालचक्र घड़ी के कांटों के समान मेरी नाड़ी के चाप और दिल की धड़क पर छाया हुआ है। फिर मैं खुद अपनी दुनिया बना सकता हूं। जब चारों ओर अन्धकार होगा, आकाश मेरे लिए तारकप्रदीप लायेगा। कभी ऐसा भी होगा कि इस सूखे ठूँठ में फूल-पत्तियाँ आयेंगी; इस मरुभूमि में जल-सरिता बहेगी; यह बुझी हुई बिजली फिर झलकेगी। अभी न मौत है न ज़िन्दगी—निश्चलता है, अकर्मण्यता है, अनुभूतिहीनता है। मगर क्या वह दिन कभी न आयेगा, जब मेरी ज़िन्दगी अगर मौत पैदा करेगी तो मौत ज़िन्दगी का ताना-बाना बुनने लगेगी?

लाहौर—मार्च १९३९

—०—

मुझे जाने दो !

"मुझे जाने दो"—उसने कहा। और जब तक मैं उसे रोकूं, वह हाथ छुड़ा कर जा चुकी थी। अँधेरे में उसकी आँखों की एक झपक और चौखट पर पायल की एक झनक सुनाई दी। वह चली गई और मैं कोठरी में अकेला रह गया।

मैं वहाँ जाना न चाहता था। कई बार मैं उस मकान के सामने से गुज़रा था और शाम को कुछ जवान लड़कियों को उसके आगे खड़ा पाया था। जाड़े की रातों में बाँह-खुले जम्पर पहिने यह छोकरियाँ राहचलतों को लुभाने की जुगत किया करती थीं। कोई भी आँखों वाला पौडर की लाली में स्त्रीत्व के लहू की झलक देख सकता था। उनके शरीर का हर रोवां थरथरा कर कह रहा था—'हमें ले लो, एक रुपये के बदले' !

इनमें से कोई सिगरेट का धुवां बड़ी नज़ाकत से किसी रंगीले के मुंह पर फूंक देती थी और कोई मनचली किसी बेडौल मारवाड़ी के जूते पर पान की पीक थूक देती थी। जब वह पलट कर देखता तो लड़कियाँ आँख मार कर खिलखिला पड़ती थीं। उनकी हर अदा से यह बात निकलती थी—'हमें ले लो, एक रुपये के बदले !'

ट्रामों और मोटरों पर सम्भ्रान्त महिलाओं के खेप गुज़रा करते थे। इन टकैती वेश्याओं पर निगाह पड़ते ही यह देवियाँ भौं चढ़ा कर दूसरी ओर देखने लगती थीं। इन कलमुही कलङ्क-कुमारियों का

सत्यानास हो ! चंद टकों के लिए, शराब की एक बोतल या सिगरेट की एक डिबिया के लिए अपना तन हर ऐरे-गैरे को सौंपते इन्हें कोई सङ्कोच नहीं होता। और हम ? —फिर वे अपने पतियों को याद करने लगती थीं, जिन्होंने उन्हें ऊँची हवेलियाँ, रेशमी साड़ियाँ और छः छः बच्चे भेंट किये थे !

इस वेश्यालय के समीप एक छोटी सी कालीबाड़ी थी। उसकी काली-कलूटी और नंग-धड़ंग देवी अपनी पथराई हुई आँखों से दुनिया का तमाशा देखा करती थी। शाम को जब आरती शुरू होती और निर्बोध कुमारियां उसके आगे नाचने लगतीं तो मिट्टी के दियों की धुँधली जोत में उसका राग-रूप अधिक भयावह और रहस्यमय हो जाता। भान होता कि औरत की आत्मा काला कफ़न ओढ़े हुए अपनी समाधि से उठी है और पल भर में दर्द को कुचल कर रख देगी। जो लोग दर्शन को आते, हाथ बाँधे हुए ललचाई दृष्टि से इन नर्त्तकियों को ताका करते थे। जब वे आँख उठा कर भी न देखतीं, तो वे बेधड़क उन वेश्याओं को घूरने लगते जो पुजारी के डर से सीढ़ी के पास सिर झुकाए खड़ी रहती थीं।

इनमें से एक का हाव-भाव सब से निराला था। उसके मन को पूजा की महिमा का ज्ञान न था। वह सिगरेट पीती हुई लापरवाही से आरती का तमाशा देखती और रह रह कर कीर्तन की लय पर पैरों से टेक देने लगती थी। जब कोई बूढ़ा अपनी घटी हुई आवाज़ से संगीत को बेसुरा कर देता तो वह खिलखिला कर हँस पड़ती और पनवाड़ी को पुकार कर कहती—'अरे, ज़रा सी सुरती तो बनाना।'

और पूजा के गीत देर तक पङ्खहीन पतिंगों के समान तड़फा करते थे।

जब मैंने पहिली बार उसे देखा तो मेरा दिल डरा, झिझका और आप ही आप उसकी ओर झुक गया। मैं भागते भागते भी उसके निकट पहुँच गया।

पर उसने अनमनेपन से मुझ पर उचटती हुई दृष्टि डाली और अपनी एक सखी से पूछने लगी—"अरी उस लँगड़े से कितने ऐंठे?"

अब मैं हर शाम को उस फ़ुटपाथ पर से गुज़रने लगा। जब वह बाहर खड़ी होती, तो कुछ हैरानी से मेरी ओर देखती और फिर होठों होठों में मुस्कुरा कर अपनी सहेलियों से बातचीत करने लगती। कभी वह वहाँ नहीं भी होती थी और मैं समझ जाता था कि वह कहां है। दिल पर चोट सी लगती, रगों में लहू तेज़ी से बहने लगता और माथे पर पसीने की बूंदे आ जातीं। दूर हट कर लैंप के खंभे का सहारा लिए घंटों खड़ा रहता था—इतनी देर कि पैर सुन्न हो जाते थे। मैं यों ही टकटकी बांधे उस फाटक को ताकता रहता था। समाज के बहुतेरे धनी-धोरी उसके अन्दर से निकलते और दाहिने बायें देख कर लपकते हुए भीड़ में गुम हो जाते थे। लम्बी लम्बी चोटियों और घनी डाढ़ियों वाले बीसियों सदाचारी इस चकलाघर से बरामद होकर भीगी बिल्लियों के समान पंजे दबाये भागते नज़र आते थे।

मुझे याद है कि मैंने उससे बातचीत करने का साहस कैसे किया था। उस दिन मैं एक प्यारे दोस्त को समाधिस्थ करके लौटा था।

वह घुल घुल कर मर गया क्योंकि इलाज के लिये रुपये न थे। जब वह मर गया तो हमने उसे मिट्टी के नीचे दबा दिया। गोया आदमी समाज की समाधि में चांदी के ढेलों के नीचे दब गया और उसने मरते मरते कहा—"मेरी पीप तुम्हारी देह को सड़ायेगी, मेरे आँसू तुम्हारी हड्डियों को गलाएँगे, मेरा ख़ून तुम्हारी रगों को गरमायेगा।"

जब मैं क़ब्रिस्तान से लौटा तो विवेक की जगह कोई चीज़ भांय भांय कर रही थी। दिया जले न जाने किसने मुझे उस कोठे के आगे पहुँचा दिया। और मैंने बे कुछ कहे सुने हाथ पकड़ कर उसे अन्दर घसीट लिया।

कड़वेपन से एक एक शब्द को चबा कर वह बोली—कालीबाड़ी के पीछे की गली में कल्लाल की दूकान है, वहां से ठर्रे का एक अद्धा तो ले आना।

जादू से बँधे हुए ग़ुलाम की तरह मैं कल्लाल की दूकान में घुसा जो मिट्टी के बड़े बड़े मटकों से अटाटूट भरी हुई थी और उनकी ताड़ी व सेंधी में मक्खियाँ और मकोड़े तैर रहे थे। अन्दर मतवाले गा रहे थे—

"एक शा नम्बर वन का...आ—बहा दे नाला!"

मैंने जल्दी से एक अद्धा ख़रीदा और दोअन्नी की चाट—चटपटी, मसालेदार।

उसने देखते देखते मुंह लगा कर आधी बोतल ख़ाली कर दी। फिर चुपचाप एक सिगरेट सुलगाया। और अपने पाँव फैला कर टूटी हुई आरामकुर्सी पर लेट गयी।

एकाएक वह ज़ोर से हँसी और मुझ पर आँखें गाड़ कर पूछा—"तुम यहाँ क्यों आये हो ?"

हवा बन्द थी। खिड़की से आकाश का एक छोटा सा टुकड़ा नज़र आ रहा था, जिसमें दो तीन तारे चमेली के फूलों के समान खिले हुए थे ।

मैंने कोई जवाब न दिया। ऐसे सवाल का जवाब भी क्या हो सकता था ?

"बोलते नहीं ? मैं पूछ रही हूँ कि तुम यहाँ किस लिये आये हो ? मुझे उस मर्द से घिन आती है जो औरत के पास बैठ कर अपना मतलब आँखों आँखों में बयान करता है और उस घड़ी की प्रतीक्षा करता है जब तंग आकर औरत ख़ुद अपने मुंह से पूछेगी कि तुम चाहते क्या हो ?"

उसने बोतल की बची हुई शराब भी अपने गले के नीचे उतार ली और सिगरेट का कश लेकर बाहर देखने लगी। मेरे मुंह पर चुप्पी की मुहर लगी हुई थी। ख़ुद मुझे भी नहीं मालूम था कि यहां क्यों आया हूँ और चाहता क्या हूँ।

फिर वह उठ कर कमरे में टहलने लगी। टहलते टहलते आईने के आगे रुक गयी और उसमें अपनी सूरत देखने लगी। जब वह दोबारा हँसी तो ऐसा लगा कि कोई मुर्दा हँस रहा है।

"यह मेरी ही सूरत है। अगर मैं पौडर, काजल और लाखे को धो डालूं तो क्या रह जाये—पिचके हुए गाल, सूखे हुए होंठ, धँसी हुई आँखें ! तीन साल में क्या से क्या हो गया। मेरे बदन को घुन लग चुका है। मैं अन्दर से खोखली हो गयी हूँ। मुझे ऐसे ऐसे रोग लग

गये हैं जिनकी कल्पना मात्र से तुम सहम जाओगे और यहाँ एक क्षणभी न ठहरोगे।"

देर तक वह कुछ सोचती रही। अब उसका मुंह क्रोध के मारे तमतमाने लगा। मुझे घूर कर वह गरज उठी—"और यह रोग मुझे कहाँ से लगे ? यह तुम जैसे चाहने वालों की ही भेंट है। मर्द ?—सूज़ाक और आतशक के कीड़ों का बाप ?

'तुम अभी इस कुंज-गली की रीति-रस्म को नहीं जानते। यदि तुम्हें अपने दूसरे भाइयों की तरह मालूम होता कि औरत मिट्टी का एक खिलौना है और बस—तो तुम आते ही उसे तोड़ देते—इस प्रकार अचम्भे और घबराहट से मुझे न ताका करते फिर भी तुम उन लोगों से अच्छे हो जो भूखे भेड़िये के समान देखते ही हमारे सीनों पर आते हैं, हमें कुत्तों के समान भँभोड़ते हैं और हमारे पल्लों में दो चार टिकल्लियाँ बाँध कर चले जाते हैं।

'फिर बाड़ी वाली आती है।' गाँठ से एक एक छदाम निकाल कर ले जाती है और इसके बदले खाने के लिए रोटियां और सिंगार के लिये काजल की सलाई दे जाती है।

'दिन के उजाले में जब भूले-भटके तुम्हारा इधर से जाना होता है तो आकाश की ओर नाक उठा कर कहते हो कि यहाँ व्यभिचार है। इन टकैती वेश्याओं को स्त्रीत्व की लेशमात्र लाज नहीं। इन्हें शहर से निकाल देना चाहिये।

'पर रात के अँधेरे में तुम चुपके चुपके आते हो और मानवता के इस मरघट को आबाद करते हो। मुंह काला करके अपनी हराम

की कमाई चन्द कौड़ियां हमें थमाते हो और फिर अपने रनवास को यह चिंता लिये हुये भागते हो कि—श्रीमती तो कुशलपूर्वक हैं !"

वह हाँफने और खाँसने लगी। उसकी साँस फूल गयी और वह चारपाई पर गिर पड़ी। उदासी से उस काजल की कोठरी को निहार कर वह धीरे धीरे कहने लगी—अधिक देर नहीं है। कोई कानों में कह रहा है कि इस नाटक पर शीघ्र परदा गिर पड़ेगा। अब तो सब कुछ सपना जान पड़ता है।

'जब मैं मर जाऊँ और मेरी लाश अनाथों के विस्मृत्तिगर्त्त में फेंक दी जाये तो तुम अलीगढ़ के मौलवी से मिलना। उस समय उनके पास जाना जब वे मस्जिद के सुखासन पर अड्डा जमाये नैतिकता की महिमा बखान रहे हों। और जब वे नारी की कुचाल पर चोंच खोलें तो आगे बढ़ कर कहना—मौलवी साहिब, अब आप अनैतिकता की जान को अधिक न रोवें, क्योंकि, कलकत्ते में उस बेचारी की अकाल मृत्यु हो गयी।

'और जब सब बुड्ढे नमाज़ी ऐनकें खिसका कर और डाढ़ियाँ फर्रा कर तुम्हें घूरें कि क्या बकता है तो कहना—मैं आपकी बेटी की शवयात्रा का तमाशा देख कर आ रहा हूँ—वही जिसे एक 'हरामी' बच्चा पैदा करने के अपराध में आपने घर से निकाल दिया था, जिसे समाज ने आश्रय देने से इनकार करके वेश्या बनने के लिये लाचार कर दिया था। समाज-सेवा का बदला उसे घिनौने रोगों के रूप में मिला और जब वह मर गयी तो एक मुल्ला ने उसकी लाश पर अल्लाह मियां का गुणगान किया जब तुम यह कह चुकोगे तो लोग तुम्हें बहुत पीटेंगे, पर अपने प्रेम के नाते तुम इतना कष्ट उठा लेना।'

मेरा दिल बैठा जा रहा था। मैं चाहता था कि वहां से भाग जाऊँ पर पैरों में जैसे ज़ंजीर पड़ गयी थी।

वह फिर खांसने लगी। जब उसका जी कुछ सँभला तो वह फूट फूट कर रोने लगी —"तुम लोग जानवरों पर दया करते हो। उन्हें कोई सताता है तो सज़ाएँ देते हो। साँडों और बन्दरों का मनुष्यों से अधिक सत्कार करते हो। पर औरत ?—आह, औरत पर इतना अत्याचार क्यों करते हो ? और स्त्री पत्नी बन कर पुरुष से अधिक वेश्या से घृणा करती है। वह नहीं जानती कि वेश्या न हो तो पुरुष की बर्बरता किसी स्त्री के सतीत्व को ठिकाने न रखेगी।"

अब हवा चल रही थी, और ताड़ के पत्ते दर्दभरी आवाज़ में कराह रहे थे। सड़कों पर ट्रामों और मोटरों का शोर कम हो गया था। हाँ, इक्के-दुक्के रिक्शा की घंटी कभी-कभी बज उठती थी। बादलों ने आकाश के उस टुकड़े को घेर लिया था और इनमें कभी कभी बिजली चमक उठती थी।

वह फिर बोलने लगी—"मैंने केवल एक बार प्रेम किया है और अब भी इस मोह में मग्न हूं कि वह प्रेम अकपट था। यह मोह कभी न टूटेगा क्योंकि प्रेम-परीक्षा से पहिले ही वह मर गया। वह अपनी बड़ी-बड़ी आँखें उठा कर किस आतुरता से मुझे देखता था। उसी की याद संसार में मुझे सबसे प्यारी है। मैंने सब कुछ उसे सौंप दिया और इससे पहिले कि वह इसकी क़ीमत लौटाये, प्लेग में मर गया। उसने मुझे बच्चा दिया, वह 'हरामी' था। काश, हमारे प्रेम को नैतिकता की मोहर मिल जाती और उस बच्चे की जान बच जाती।"

इन भूली हुई बातों की याद से उसका दिल भर आया और रोते रोते उसकी हिचकी बँध गयी। मेरी समझ में न आया कि उसे किस तरह दिलासा दूँ। जिस माँ के आगे उसके बच्चे की लाश पड़ी हुई हो और जिस औरत के आगे उसके प्रीतम की अर्थी, उसे सन्तोष देने का ढब कोई भाषा पैदा नहीं कर सकती।

जैसे वह अदालत के आगे बयान दे रही हो—"मेरी सौतेली माँ ने अँधेरी रात में उस बच्चे को आँगन में ज़िन्दा गाड़ दिया। बिछौने पर लेटे लेटे बिजली की रोशनी में मैंने यह हृदयबेधक दृश्य देखा और फिर चीख़ कर बेसुध हो गयी।

"एक दो सप्ताह बाद सौतेले मामा ने मुझे गाड़ी में बिठा कर इलाहाबाद का टिकट थमा दिया। दूर के एक सम्बन्धी का घर... बलात्कार...बदनामी का डर और घर निकाला....कलकत्ता...यह चकलाघर!—"

अस्फुट स्वर में वह यह उखड़े हुए शब्द दोहराती रही और पल भर के लिये उसकी आँख झपक गयी।

मैं दबे पाँव उठा और निकल भागने के इरादे से जूते पहिनने लगा। इतने में वह चौंक कर उठ बैठी: "क्या तुम जा रहे हो?" उसने उदासी से पूछा। अब उसकी आवाज़ निढाल पड़ गयी थी!

मैं खड़ा का खड़ा रह गया अब भी कुछ न कह सका। 'अच्छा तो जाओ अब न आना। मैं तुमसे बदला लेना नहीं चाहती। और कोई होता तो ख़ुशी ख़ुशी सुज़ाक का उपहार देती, वह किसी और को देता, फिर यह विष उसके बच्चों में जाता। धीरे धीरे सारी दुनिया

इन विषैले रोगों का शिकार हो जाती। तब शायद समाज के ठेकेदारों को होश आता कि इस विष-वृक्ष की जड़ कहां है।

"कभी कभी आकर पूछ जाओगे कि मेरे मरने में कितनी देर है? कोई भरी जवानी में मरता है तो लोग दुख मनाते हैं कि जीवन ने इसे अभी दिया ही क्या था। पर मुझे देखो कि जीवन से मौत के सिवा और किसी चीज़ की भीख नहीं मांगती। तुम क्या जानो कि हम आप अपनी दृष्टि में कितनी पतित हैं। हम ऐसी लौंडियां हैं जिनके मालिक हर रोज़ बदलते हैं।—क्यों, किस ध्यान में गुम हो गये? जाओ, ईश्वर के लिये चले जाओ।"

तब भी मैं न जा सका। मुझे उससे कुछ नहीं लेना था, फिर भी पङ्खबद्ध पक्षी के समान अपने स्थान से न टल सका।

"मैं नहीं जाऊँगा"—यह कह कर अपना सिर मैंने उसकी गोद में रख दिया। वह एक बेजान लाश की तरह यों ही पड़ी रही। उसके दिल की धड़कन को मैं साफ़ सुन सकता था, उसकी आत्मा का विलाप मेरे कानों में गूंज रहा था।

"तो फिर मुझे जाने दो"—उसने कहा और वह चली गयी।

हैदराबाद—जुलाई १९३७

रूसी कवि की आत्म-हत्या

[कोई पन्द्रह साल पहले पेरिस में 'आगस्ट फ़िलीपोफ़' नामी नौजवान रूसी कवि रहा करता था। भूख की दारुण यातना से तंग आ कर उसने आत्म-हत्या कर ली। उसकी लाश के साथ निम्नानुवादित वसीयतनामा मिला, जिसके छपते ही फ्रांस में हलचल मच गयी। तब दुनिया को मालूम हुआ कि उसने कैसे एक महान् साहित्यिक को रोटियों के लिये तरसा कर मार डाला।]

मैं अपनी कहानी दिल की गहराई से लिख रहा हूँ। इसलिये वह बिलकुल सच्ची है ; क्योंकि दिल की गहराई में सत्य और प्रेम के सिवा और कुछ नहीं मिल सकता।

लेकिन समझ में नहीं आता कि इस कहानी को शुरू कैसे करूँ? जीवन का ताना बाना जिन रंग बिरंगे तारों से बुना गया है, उनमें से किस तार को पहले छेड़ूँ? मेरे सामने सफ़ेद तार भी हैं, लाल भी, नीले भी ; और ऐसे तार भी हैं जिनका अपना कोई रंग नहीं है जो केवल जादू के रंग में शराबोर हैं। मज़बूत तार भी हैं और हलके भी, ऐसे हलके कि छूते ही बिखर जाते हैं। इन सब रंग-बिरंगे तारों को लेकर जीवन-तन्त्री तैयार हुई है।

मेरे हृदय में अनन्त आनन्द-सागर हिलोरें मारा करता है। यह आनन्द वैसा ही है जैसा वसन्त के आगमन के समय महसूस होता

है। मेरा आनन्द प्रेम के हर्षातिरेक से भी अधिक विशाल और मालामाल है। संगीत के मन-भावन रस से मेरा आन्द डूबा हुआ है। यह आनन्द इतना प्रत्यक्ष है कि उसे मैं अपनी उँगलियों से छू सकता हूँ।

फिर मेरे हृदय में शोक की आँधियाँ उठती हैं, ऐसी जो किसी जवान या किसी बहादुर या किसी दुल्हन की मौत से ज़्यादा दर्दनाक हैं। उनकी आग कभी नहीं बुझती। आँसुओं की झड़ी कभी नहीं थमती, यहाँ तक कि आँखें रोते-रोते प्रकाशहीन हो जाती हैं।

मेरे दिल में अरमान हैं— इतने अरमान जिनका हिसाब नहीं लगाया जा सकता। इस कामना-बेल का ओरछोर न आँख देख सकती है, न कल्पना परख सकती है। कल्पना ने ही इन अरमानों को जन्म दिया, पर अब कल्पना ही इन्हें देख कर भौंचक्की हो गयी है। दिमाग़ उन्हें सोच कर सन्नाटे में आ जाता है। वह सोचने लगता है कि क्या यह सम्भव है? फिर घबरा कर पुकार उठता है—नामुमकिन है, बिलकुल नामुमकिन।

मेरे हृदय में निराशाओं का जमघट है। ये निराशायें इस तरह बल खाती हुई लिपटी हुई हैं, जैसे रेगिस्तानी सर्पराज हाथी पर झपटता है और जीते आदमी को निगल जाता है। घटाटोप अन्धकार में पथहीन अभागे की निराशा और तपती हुई मरुभूमि में भटकने वाले बहरे गूंगे की निराशा से भी अधिक भयानक निराशायें मेरे हृदय में अपने डरावने फन उठाए हुए बैठी हैं।

मेरे हृदय में डर का राज है। ज़िन्दगी और मौत का डर; अमीरी और ग़रीबी का डर। जिसे नहीं देखा है उसका भी भय।

प्रेम का डर और घृणा से डर! चेतना से डर और बेहोशी का ख़ौफ़!

मेरा हृदय परोपकारी है। बिना किसी दलील के वह नेक बन बैठा है। बुद्धि और ज्ञान की राय इस मामले में उसने नहीं ली, जैसे यह सरलता आकाश से उतर कर मेरे मन-मन्दिर में बिराज गयी हो। वह मुझमें साहस और वीरता पैदा करती है। वह एक पुराने पेड़ की ओर संकेत करती है जिसकी जड़ पृथ्वी की गोद में छिपी हुई है, जिसकी टहनियाँ सूख चुकी हैं, पत्ते पीले पड़ चुके हैं; फिर भी यहाँ-वहाँ हरीतिमा की झलक रह गयी है। यह वह अद्भुत हरीतिमा है जो पतझड़ में केवल बूढ़े पेड़ों पर देखने में आती है। इस पेड़ की काटछाँट में माली का जीवन बीत चुका है, वह पेड़, जो अपनी प्राचीनता और उदासी के कारण किसी देवता का मन्दिर मालूम पड़ता है, ऐसे देवता का मन्दिर जो अपने पुजारियों की अभिलाषा पूरी न करने के कारण भाग गया हो! हाँ, उसी डरावने पेड़ का का नाम बूढ़े माली ने अपने झुर्रीदार हाथों से भद्दे अक्षरों में लिखा है—'धैर्य!'

यह सब बोझ अपने दिल में उठाये हुए मैं शहर में फिरता हूं। शत्रु-मित्र सभी से मिलता हूं। हँसता-बोलता हूँ, हँसी दिल्लगी में शरीक होता हूँ, हर सवाल का जवाब देता हूँ। मुस्कराते हुए हर आदमी को सलाम करता हूँ। उनकी खुशी पर खिल उठता हूँ और उनके दुख को देख कर कुढ़ उठता हूँ, जैसे उन्हीं में से एक मैं भी हूँ।

यह सब होते हुए भी मेरा दिल धड़कने लगता है। बहुत ज़ोर

से धड़कन उठती है। मुझे सन्देह होता है कि यह मेरा दिल नहीं, बल्कि बिजली का पंखा है, जो अपनी पूरी गति से चल रहा है। तब मैं उसे इतने गौर से देखने लगता हूँ, जैसे वह मेरे सीने में नहीं, किसी और के सीने में है। फिर मैं आश्चर्य से चिल्ला उठता हूँ। इस अनोखे का यह तूफ़ानी चक्कर कब तक जारी रहेगा? कारीगर ने इसे बनाने में सचमुच कमाल कर दिया है। मगर वह कब तक इस तीव्र गति को सह सकेगा? क्या वह टूट कर टुकड़े-टुकड़े न हो जायगा? हर मशीन को कुछ देर के लिये सुस्ताने को बन्द कर देते हैं, लेकिन क्या इस मशीन को एक मिनट भी आराम नहीं मिलेगा? इसके लिये वह तेल कहाँ है जो फ़ौलाद को भी नर्म कर देता है? ज़हर का यह ढेर क्या है—रंज और ग़म का ज़हर, जो आँख, नाक, कान, जीभ और दिमाग़ के रास्ते हमेशा मेरे शरीर में भीगा करता है। यह छोटी सी मशीन जो मेरी छाती में दीर्घ-काल से अपने अनन्तपथ पर चल रही है, ज़हर के इस ढेर को किस तरह निकाल फेंकेगी? ऐसा कौन चतुर इंजीनियर है जो दिल की मशीन से इस जेक को साफ़ कर सकता है।

× × ×

मेरी दुख बीती! क्या मैं इसे शुरू से लिखूँ? क्या उस घड़ी से आरम्भ करूँ जब पहले-पहल जीवन का अर्थ मैंने समझा था और इस बोझ को अपने कंधे पर उठाया था? या उस अन्तिम घड़ी से शुरू करूँ जब मैं जीवन से अन्तिम बार गले मिल कर उसका बोझ उतारना चाहता हूँ जो बोझ से लदी हुई गाड़ी में जुते हुए घोड़े के समान थकावट से चूर-चूर हो गया है, जिसे कोड़ों की मार ने घायल

कर डाला है और जब वह गाड़ी में ज़ोर लगाता है तो घाव गहरा हो जाता है, मगर कोई आँख उठा कर भी उसे नहीं देखता, क्योंकि वह उस ज़ीन-लगाम के नीचे छिपा हुआ है, पैदा होने के बाद ही जिनसे वह ढँक दिया गया था और आजीवन ढँका रहेगा।

मेरी कहानी मनुष्यता को बदनाम करनेवाली और उसे अपनी आँखों में गिराने वाली है। मनुष्यता उन स्त्रियों के समान है जो ऊँचे और शानदार महलों और चितचोर गीतों की गूँज में बच्चों को दूध पिलाने के लिये उनकी माताओं से लेती हैं और अँधेरी काल-कोठरियों में बैठ कर उनका गला घोंट देती हैं। यह पतिता नारियाँ पागल होती हैं, मगर नन्हें बच्चों को मारने का शौक उन्हें उतनी देर के लिये बहुत बुद्धिमान बना देता है, जितनी देर में वह बच्चे हासिल हो सकते हैं। वह बड़ी चतुराई से बनावटी सिंगार करके जाती हैं और मीठी मीठी बातें करके माँ की गोद को ख़ाली करा लेती हैं।

ठीक यही हाल कपटी और पागल मनुष्यता का भी है। वह अपनी इच्छाओं की लौंडी और मोह की पुजारिन होती है। मनुष्यता वह पापिनी चुड़ैल है जो अपनी बदमस्ती में अपने कर्तव्य को भूल बैठी है और मूर्खता के कारण जीवन के तत्व को नहीं पहचानती। मनुष्यता वह सौतेली माँ है जिसके दिल में ममता का नाम तक नहीं।

मैं इस संसार के किस झूठ से अपनी कहानी शुरू करूँ, क्योंकि मैं इसके तमाम झूठों का शिकार बन चुका हूँ ? वह देखो, मेरे सब

बच्चे बीमार पड़े हैं और दुख के मारे कराह रहे हैं। किसी की आँख दुख रही है, किसी के गिलटी निकल आयी है। कोई पैदायशी लुंजा है जिसे न किसी दवा से लाभ होता है न किसी परहेज़ से।

मेरी पत्नी इस प्रकार रोती फिरती है जैसे उसे फाँसी की आज्ञा मिल चुकी हो और जल्लाद डोरी लिये सामने खड़े हों। उसे रुपये की, आराम की, खुली हवा की और लम्बे सफ़र की ज़रूरत है। वह ईश्वर से दया की भिक्षा माँग रही है, हालाकि न उसने किसी पर दया की थी और न किसी ने उस पर दया दिखायी है। मेरे लिये यह जान लेना सब से अधिक यातना है कि वह बकती रहती है और मेरी कोई बात नहीं सुनना चाहती। वह अपने को बहुत समझदार मानती है, हालाकि बिलकुल बेसमझ है। वह उन मुसीबतों को ले कर रोती-धोती है जिन्हें अपनी नादानी या नेकनीयती से उसने खुद ही पैदा किया है। नेकनीयती का नाम यहाँ बड़े मौके से आया, क्योंकि एक अंग्रेज़ी कहावत है—"नरक का मार्ग भी तो नेकनीयती ने तैयार किया है!"

मानव-हृदय! न्याय कर! इससे बढ़ कर दुख की बात तेरे लिये क्या हो सकती है कि ऐसी कठिनाई तेरे आगे आ जाये जिसे सुलझाना तेरी ताक़त से बाहर हो, ऐसी बुराई जिसका सुधार तू न कर सकता हो, ऐसी बीमारी, जिसका कोई इलाज नहीं है, ऐसी तंगी, जिसे दूर करना तेरे बस में नहीं है? यह बीमारी और तंगी इसलिये पैदा हुई है कि तेरा बेटा, जिसे रोगों ने हड्डियों का ढाँचा बना दिया है, जिसकी आवाज़ भूख के मारे धीमी पड़ गयी है—आह! वह

घसिट कर तेरी ओर बढ़ना चाहता है। अपने नन्हे-नन्हे कमज़ोर हाथ बढ़ाता है, अपनी प्रकाशहीन आँखों से तुझे आशापूर्ण चितवनों से ताकता है और अपनी दर्दभरी आवाज़ में रोटी का टुकड़ा—बस एक टुकड़ा—माँगता है। मगर तू उसे रोटी का एक टुकड़ा भी नहीं दे सकता। तू उस निर्दोष के सामने इस तरह मुँह बाँधे चुपचाप बैठा है जैसे कोई मूर्त्ति किसी मन्दिर में रखी हो! तू टुकुर-टुकुर अपने कलेजे के टुकड़े को देखता है। बोलने का इरादा भी करता है, बढ़ कर उसे छाती से लगा लेना चाहता है, पर तेरा शरीर ऐसा निश्चल हो गया है, जैसे लकवा मार गया हो।

यह देखो दिन पर दिन और हफ़्ते पर हफ़्ते एक ही हालत और एक ही रंग में गुज़र जाते हैं। कैसा रंग! गहरा, मटमैला और उदास! जैसे यह जीवन, जिसके हम शिकार हो रहे हैं, एक गीत है। वह गीत, जो समाधियों के बीच में ही गूँजता है और जिसके सुर संसार में दर्द फैला देते हैं। वह गीत, जिसे शोपेनहायर ने अपनी मृत्युमयी निराशा में, बेठोवेन ने अपने गहरे विषाद में, चेकोवस्की ने अपने शोकपूर्ण विस्मय में, अलापा था! वह ऐसा गीत है जिसका हर उतार-चढ़ाव दिल की एक-एक नस को काटता और आत्मा के एक-एक तार को मसल डालता है।

यह देखो बनिये दरवाज़े पर खड़े हैं, जैसे उन्होंने आपस में साज़िश कर ली हो कि एक साथ और एक ही जगह तक़ाज़ा करेंगे। ऋण देते समय यह लोग जितने हँसमुख, मिलनसार और भलेमानस थे, अब ऋण सकारते समय उतने ही ज़ालिम और कमीने बन गये

हैं। उन्होंने यह फैसला कर लिया है कि अपनी दूकानों पर मेरा स्वागत न करेंगे और खुद मेरे दरवाज़े पर मेरा अपमान करने की घुड़दौड़ में दूसरे से बाज़ी मार ले जायेंगे। उनकी नज़र में मैं ऐसा ऋणी हूं जिसके वादे का ऐतबार नहीं; ऐसा ऋणी नहीं जिसे सारी दुनिया ने धोखा दिया है। उनमें से किसी एक आदमी को भी मैंने ऐसा नहीं देखा जो इस विचार से ज़रा भी डरता हो कि कल उसकी हालत भी मुझ जैसी हो सकती है। जान पड़ता है कि क्षणिक वैभव का मद मनुष्य को संसार-चक्र की गति से अंधा कर देता है और अभिमान के साथ ही साथ क्रूरता भी पैदा कर देता है। शायद अपने धन और बल का विश्वास मनुष्य को इस मोह जाल में फँसा देता है कि दुख-दर्द उसके लिये बने ही नहीं! मुझे देखो कि हर तरह की मुसीबत में भी मानव-जाति के उद्धार के उपाय सोचा करता हूँ। मगर इतना धन-माल होते हुए भी वह मेरी कोई दलील नहीं सुनना चाहते और दिन-रात अपने क़र्ज़ का तक़ाज़ा करते रहते हैं। अब इन सूदख़ोरों ने मेरी हालत वेलिंगटन की सी बना दी है, जो वाटरलू के युद्ध से पहले चिल्ला उठा था—' ब्लूचर या रात !' इसी तरह मैं भी अपने दिल में पुकार उठता हूँ—'रुपया या रात !' लेकिन कुछ सूदख़ोर चमगादड़ों के समान रात को भी मेरे घर पर मँड़राते हैं और बार-बार दस्तक दिया करते हैं।

जब रात अधिक बीत जाती है और चारों ओर सन्नाटा छा जाता है तो मैं विक्रम या भोज के किसी अवतार का इन्तज़ार करने लगता हूँ जो प्राचीनकाल में अचानक आकर भिखारियों को दौलत से मालामाल कर दिया करते थे। हर खटके पर शक होता है कि

कोई मुझे पुकार रहा है। फौरन अपनी साँस रोक कर और कान खड़े करके आहट लेता हूँ।

मगर हाय रे प्रारब्ध ! दरवाज़े पर सन्नाटे के सिवा कुछ नहीं है। मेरी रात उसी ढंग से बीत जाती है जिसका चित्र खींचते हुए एक कवि कहता है—

'हाय रे एकांत ! हाय री दरिद्रता !'

—०—

सिपाही की टाँग

दूसरे दर्जे के यात्रियों में विचार-विभिन्नता कम होती ही है। इसलिये सब ने सर्दार झंडासिंह के इस ऐलान को जी भर कर सराहा कि युद्ध बिना मानव-जीवन दूभर हो जायेगा। सर्दार जी ने सब के सामने कपड़े उतारते और छिपी हुई तोंद का भेद उजागर करते हुए कहा : "लड़ाइयाँ बन्द हो जायें तो सब लोग नामर्द हो जायें।" तोंद पतलून की पकड़ से मुक्त होते ही गुब्बारे की तरह फूल गयी और सर्दार जी के क़हक़हो के उतार-चढ़ाव के अनुसार उसमें ज्वार-भाटा आने लगा।

सर्दार जी की देखा-देखी और लोगों ने भी कमर ढीली करना शुरू किया। और थोड़ी देर में रौशनी के आस-पास मंडराने वाले पतिंगो ने देखा कि डिब्बे में पिलपिले शरीरो का ढेर लगा हुआ है। वह इतने आत्महीन हैं कि अगर उन्हें काट कर कसाई की दूकान में उलटा टांग दिया जाये तो ग्राहक की समझ में न आये कि बकरा कौन है और बैल कौन!

सर्दार जी ने सोने से पहिले गुरु-नाम का जाप किया, हाज़मे की दवा खायी जिसका असर एक ज़ोरदार डकार की सूरत में ज़ाहिर हुआ। फिर तकिये पर सिर रख कर चश्मे की कमानी को डाढ़ी के उलझटों से निकाल कर अपनी डायरी का अध्ययन शुरू किया जिसमें सरकारी ठेकों का ब्योरा दर्ज था।

लाला नत्थूमल ने सफ़ेद क़मीज़ के अंदर छिपी हुई बनियाइन को उतारते हुए तोंद की सिलवटों में एक अदद पिस्सू का अन्वेषण किया और चादर पर पान की पीक टपकाते हुए कहा—"कलकत्ते में जिंदगी मुसकिल हो गयी है।"

ऊपर की बर्थ पर एक डिप्टी साहिब एकांत में कपड़े बदल रहे थे। कालर का पिछला हिस्सा किसी आंख-ओझल कील में अटक गया था और उनकी समझ में न आ रहा था कि गर्दन क्यों भिंच गयी है। इस खींचातानी में उनका चेहरा विस्मयसूचक चिह्न बन गया था!

जब सब लोग अपने अपने बिस्तर पर लेट गये तो सिपाही ने चादर से मुंह निकाल कर इधर उधर देखा ज़रा अड़चन से उसका शरीर ऊपर उभरा और फिर एक नकली टांग हवा में अधर लटक कर रौशनी में चमकने लगी। लकड़ी की यह सुडौल टांग सियालकोट के कारख़ाने से बन कर निकली थी। सरकार ने लंगड़े सिपाही को इस टांग के साथ एक बैसाखी भी भेंट की थी। भगवान की दी हुई टांग पर भला इतना अच्छा रंग-रौग़न कहां होता है। लड़ाई में सिपाही की टांग ग़ायब हो गयी थी। उसे ख़ुद नहीं मालूम कि यह दुर्घटना कैसे हुई। वह खाई में बन्दूक छतियाये बैठा था कि पास एक धमाका हुआ और उसकी आँख बन्द हो गयी। बहुत देर बाद जब सुध आयी तो शरीर हलका फुलका और साथ ही साथ अचल-अटल हो गया था टाँग खाई से उड़ कर एक पेड़ के डुंड पर जा लटकी थी। सिपाही यह दावा तो न कर सकता था कि वह चीज़ जो अलगनी पर मैले कपड़े की तरह फैली हुई थी उसकी

अपनी वियोगिनी टाँग थी। पर इस बात का क्या जवाब था कि उसकी एक टाँग बेकहे सुने ग़ायब हो गयी थी। बेहोशी की हालत में सिपाही को ऐसा लगा कि वह नमकहराम टाँग बाक़ी शरीर से नाता तोड़ कर अकेली हवाखोरी कर रही है।

सिपाही ने नक़ली टाँग उतार कर बैसाखी बग़ल में दबायी और इधर-उधर उचक कर उसकी निपुणता को जाँचने लगा। बची हुई टाँग ने किसी विधवा के समान अकेले दम जीवन-भार उठाने से इनकार कर दिया और बैसाखी के गुदगुदे हत्थे बग़ली घूँसे के समान उसके काँधे से टकराये। जो भी हो, बैसाखी निस्संदेह नयी थी और उसमें से ताज़ा वार्निश की बू आ रही थी।

सिपाही को नींद आ गयी और उसने सपने में देखा कि कोई देव-दूत आया और उसके घुटनों में जीवन-रस इस तरह सींचा कि उसकी जड़ों से एक तना और पाँच टहनियाँ उग आयीं। हर टहनी में अनगिनत टाँगें लटक रही थीं। यह पेड़ लंगड़ों का कल्प-वृक्ष था, जो उससे टाँगें नोच नोच कर अपने बदन में जोड़ते और फिर बछेड़ों की तरह उछलते-कूदते चले जाते थे।

जब आँख खुली तो पूरब की गहराइयों से सूरज अंगारा सा मुँह निकाले घूर रहा था। सिपाही ने फ़ुर्ती से वर्दी पहिनी, सियालकोटी टाँग लगायी और बेचैनी से अगले स्टेशन की प्रतीक्षा करने लगा जहाँ उतर कर उसे अपने गाँव पहुँचना था। उसके दिल की धड़कन तेज़ हो गयी क्योंकि अब तक घरवालों को इस दुर्घटना की सूचना न मिली थी और उसके लिये यह सोचना असंभव था कि उन पर टाँग के वियोग का क्या असर होगा। सच तो यह है कि जीवन में पहिली

बार उसे टाँग के महत्त्व का अंदाज़ा हुआ। शरीर के प्रत्येक अवयव को किसी न किसी सेवा की ज़रूरत होती है। पर टाँग बेचारी बचपन से बुढ़ापे तक पहाड़ जैसे बदन और उसके पापों का बोझ लादे सर्दी गर्मी में मारी-मारी फिरती रहती है। लड़ाई के मैदान में ही ऐसा होता है कि वह अपने मालिक का बायकाट कर के अकेली भाग खड़ी हो।

इतने में एंजिन ने सीटी दी, रेल की गति धीमी हो गयी और प्लेटफ़ार्म पर देहाती बाजों का शोर सुनायी दिया। सिपाही नब्बू ख़ाँ ने वर्दी ठीक कर के अकड़ने की कोशिश की लेकिन दाहिने घुटने ने आँखों तक बेतार की तारबर्क़ी से ऐसा संदेशा भेजा कि उनमें आँसू डबडबा आये। जब प्लेटफ़ार्म से 'नब्बू ख़ाँ ज़िंदाबाद' की आवाज़ आयी तो सिपाही मन मार कर सीट पर बैठ गया।

किसी ने पुकार कर कहा : "यह रहे नब्बू ख़ाँ—अरे नचे आवो यार !"

प्लेटफ़ार्म पर देहातियों की भीड़ लगी हुई थी। वह बाजा और हार लिये अपने सूरमा की आवभगत के लिये तैयार थे जो समुद्र-पार से मैदान मार कर घर लौट रहा था।

नब्बू ख़ाँ ने छड़ी का सहारा ले कर ज़मीन पर क़दम रखा। बाप ने गले लगाया, किसी ने हार पहिनाया, किसी ने हाथ मिलाया और बाजे ने—मैं तो छोरा को भरती करा आयी रे! का भैरव राग छेड़ दिया।

अचानक कोई पुकार उठा—"नब्बू ख़ाँ की टाँग!" सब की निगाहें सिपाही की दाहिनी टाँग की ओर गयीं और सब चुप हो गये।

नब्बू खां ने जल्दी जल्दी कहना शुरू किया : अब्बा, यह वही टांग है जो बचपन में जल गयी थी। इसके बदले मुझे नयी टांग मिली है जिसे बाज़ार में ख़रीदना चाहो तो ढाई सौ से कम न लगें। जब पुरानी हो जाये तो बदलवा लो। कहो, कैसी है ? लोगों ने देखा कि नब्बू खां की नयी टांग धूप में हीरे की छड़ी के समान चमक रही है। वह जब चाहे उसे बेच कर बैल की एक जोड़ी ख़रीद सकता है। गोया उसकी टांग से दो बैल बँधे हुए हैं।

लेकिन असली या नकली टाँग की क़ीमत रुपये में किस तरह आँकी जा सकती है। किसानों ने सियालकोटी टाँग को बहुत ठोक-बजा कर देखा और उन में से एक विचारक ने कहा—"इसमें शक नहीं कि यह देखने में सुहावनी है और इसे कभी कोई रोग नहीं लग सकता। नब्बू खाँ इसे बेच कर सरकार से कह सकता है कि गुम हो गयी और इसे फिर नयी टाँग मिल जायेगी। यह कारोबार बुरा नहीं। फिर भी अल्ला मियाँ की दी हुई टाँग में बड़ा गुण होता है!"

घर पहुंचने के बाद नब्बू खाँ को यह देख कर बड़ा अचम्भा हुआ कि सब चुप चुप से रहते हैं। बूढ़ी माँ बैसाखी को छू कर रोने लगती है। शाम के धुंधलके में उसके बच्चे खेत की मेंड पर बैठे चुपके-चुपके बातें करते हैं—अब्बा एक जर्मन को पकड़ने दौड़े और एक गड्ढे में गिर पड़े। लेकिन उनकी टाँग ने बैरी का पीछा न छोड़ा और उसके पीछे पीछे दूर निकल गयी!

"भय्या, आदमी एक दूसरे को मारते क्यों हैं ?"

भाई ने अपने नन्हे से सिर को खुजाते हुए "कहा मैं क्या जानूं ?

हाँ यह मालूम है कि लोग रुपयों के लिये ऐसा करते हैं। जो सिपाही जितने ज़्यादा आदमियो को मारे उसे उतना ही ज़्यादा इनाम मिलता है। मैं भी बड़ा हो कर सिपाही बनूंगा और बन्दूक से बहुत से वैरियों को मारूंगा। सब से पहिले तो जिल्लो की जान लूंगा जिसने आज मुझे गली में पीटा था।"

नब्बू खां के मां बाप जब कुंवे की जगत पर मिल कर बैठते हैं तो उनकी बातचीत का केन्द्र एकलौते बेटे की गुमशुदा टाँग होती है। बेटे से ज़्यादा उन्हें इसके गुम होने का दुख है। दोनों ने मिल कर उसे पैदा किया और पाला पोसा। अब जो वह एक हरी भरी टहनी बन गयी तो वह समुद्रपार के किसी देश में छोड़ आया। अब देखो कि वह एकरंगे मुर्ग की तरह बैसाखी की मूठ पर नाच रहा है।

बूढ़ा अपने रुंधे हुए गले को साफ़ करके कहता है—"बड़ी बी, पीर जमालशाह की दरगाह पर मानता मानो, शायद नब्बू अच्छा हो जाय।"

नब्बू खाँ की समझ में न आता था कि सारा गाँव उसकी भली-चंगी टाँग को नहीं बल्कि उसकी कुलटा बहिन को ढूंढता है। उसकी चमकती हुई बैसाखी का रोब उसके रंग के समान कम होने लगा। और हर ऐरा-गैरा उसे देख कर पसीजी हुई आवाज़ में कह उठता : ऐसा अच्छा जवान बेकार हो गया।

नब्बू खां के दोस्त जब नहर में तैरते या घोड़ों की नंगी पीठ पर तरारे भरते निकल जाते हैं तो उसके घायल घुटने के ठुंड पर खुजली

सी होती है और वह भी चाहता है कि पानी और हवा की लहरों को चीरता हुआ निकल जाय।

पर सब से कठिन घड़ी वह होती है जब उसकी पत्नी इस घुटने पर मालिश करती हुई पास-पड़ोस के जवानों से दिन-दहाड़े आँख मिलाती है। और उसकी हर अदा पुकारती है कि मुझे जीवन का रस कौन देगा।

चलते में वह लड़खड़ाती है गोया आप अपने बोझ से दबी जा रही हो। उसकी आँखें सामने नहीं बल्कि दायें-बायें देखती हैं और जब वह खेत में जाती है तो धान की बालियां सर हिला कर जताती हैं कि अंदर—और अंदर- इस झुरमुट में तेरा यार मेहर छिपा बैठा है। जब वह खेत से बाहिर निकलती है तो उसके कपड़े घास के तिनकों से मंढ़े हुए होते हैं।

नब्बू ख़ाँ सब समझता है और उसकी बैसाखी पत्नी से पूँछताँछ भी करती रहती है। फिर भी औरत के जवान बदन की ऐंठन किसी और क़िस्म की चोट चाहती है।

नब्बू खां इस चिंता में घुला जाता है कि एक टांग की कमी या दयानती कितनी काया पलट कर सकती है। उसे दूसरों की दया से चिढ़ है, फिर भी सब उस पर तरस खाते हैं। कोई उससे सीधी तरह नहीं मिलता। मां-बाप तरस से, पत्नी ढिठाई से और बच्चे सहम कर मिलते हैं। गांव से हमेशा एक भिनभिनाहट सुनने में आती है—नब्बू खा की टाँग!

धीरे धीरे गुमशुदा टाँग का ख्याल लंगड़े सिपाही पर भूत की

तरह छा जाता है। पहिले वह इसे मामूली सी बात समझता था। लेकिन अब उठते-बैठते, चलते-फिरते इसी ध्यान में रहने लगा कि दोबारा एक टाँग पैदा करे और अपनी पत्नी को उसके नीचे कुचल दे, फिर पूछे कि अब क्या हाल है।

रात का समय था—अँधेरी रात। सब गर्मी के सताये हुए बाहिर सो रहे थे, पर बुख़ार के सबब से नब्बू खाँ बरामदे में पड़ा हुआ था। एकाएक उसकी आँख खुल गयी। क्या देखता है कि पास के मैदान में माचिस की रोशनी हुई और बुझ गयी। इस सङ्केत पर उसकी पत्नी चारपाई से उठी और इधर-उधर देख कर दबे पाँव चल खड़ी हुई।

नब्बू खाँ दम साध कर देखता रहा। मेहर, वह आवारा जिसके पास न घर था न ज़मीन, वह नब्बू खाँ से किस बात में बढ़ कर है। आखिर वह क्यों बाज़ारू कुतिया की तरह उसके पीछे फिरा करती है। अचानक उसे याद आया कि यह टाँग का चमत्कार है—वह चीज़ जो किसी दाम पर नहीं मिल सकती।

नब्बू खां ने उठ कर अंदर की कोठरी से गंडासा निकाला। पाव दबा कर, जैसे वह रणक्षेत्र में वैरी की टोह लेने निकला हो, उसी रोशनी की तरफ़ चलने लगा। समीप आकर उसने छड़ी फेंक दी और ज़मीन पर रेंगने लगा।

चारों ओर सन्नाटा था—बस जामुन के पेड़ के नीचे किसी के हांपने और किसी के खिलखिलाने की आवाज़ आ रही थी।

नब्बू खां को सेना के वह सब दांव-घात याद आ गये जो वैरी

पर छापा मारते समय काम में लाये जाते हैं। उसकी आँख चीते की तरह चमक उठी और उसने अँधेरे में वह देखा जो न देखना चाहिये था......!

उसके गंडासे का भरपूर वार मेहर की दाहिनी टाँग पर पड़ा और वह रान से कट कर अलग हो गयी।

एक डरावनी चीख से हवा गूँज उठी। जब गाँव वाले वहाँ पहुंचे तो उन्होंने देखा कि मेहर लहू में शराबोर बेसुध पड़ा हुआ है। औरत डर के मारे बेदम हो गयी है—और नब्बू खाँ अपने घायल घुटने से वह लहूलुहान टाँग बाँधे पागलों की तरह हँस रहा है!

—०—

काफ़िरिस्तान की एक रात

[अफ़ग़ानिस्तान के एक पूरबी सूबे का नाम काफ़िरिस्तान है। यहां के रहने वाले मुसलमान न होने के कारण काफ़िर कहलाते थे। अब सब अफ़ग़ानी काफ़िर मुसलमान हो गये हैं। पर इसी इलाके का जो छोटा सा हिस्सा चितराल में धँस आया है अब भी काफ़िरों से बसा हुआ है। सन् १६४२ में मुझे वहां जाने का अवसर मिला था। यह कहानी उन्ही दिनों की यादगार है।]

अलाव की आग सिसकती, सनसनाती और चटकती हुई ऊपर लपकी और उसकी चिनगारियाँ जुगनुओं की तरह हरे-भरे पेड़ों में चमकने और बुझने लगीं। जब लकड़ी के सब कुंदे आग की लपेट में आ गये तो जैसे एक अग्नि-स्तंभ नंगे मैदान की कोख से निकल कर तन गया और यों ऊंचा होता गया मानो धरती के अंदर से कोई उसे ऊपर धकेल रहा हो। घने-घने चुनारों के झुरमट को चीर कर उसकी तमतमायी हुई आँच दूर-दूर फैल गयी। उससे भी बहुत दूर उस नगाड़े की निरन्तर पुकार फैल गयी, जिसे दो युवक मारखोर के सींगों से पीट रहे थे। वह पुकार हिंदूकुश की ऊंची-ऊंची चोटियों से टकरा कर हर तरफ़ बिखर गयी—वह चोटियाँ जो काफ़िरिस्तान की इस सुहावनी वादी 'बम्बरेत' के चारों ओर गलहार की तरह लिपटी हुई थीं। और पहाड़ी नाला अपने पानी की निर्मलता पर इतराता हुआ निरर्थक कोलाहल मचाता अपनी राह बहा जा रहा था।

हिमाच्छादित पहाड़, जिनकी चोटियों ने कभी धूप का मुंह न देखा था, मलगजी सी चाँदनी में जाग कर अपने आसपास लहलहाती हुई बहार को पथरायी हुई आंखों से ताकने लगे। बहार— जिसका जादू रात को भी न सोया था और जिसके आदेश पर चीड़ और देवदार के पेड़ अपने खुरहरे वदन में से नयी नयी पत्तियाँ निकाल रहे थे।

मुसाफ़िर अलाव से हट कर चुनार तले कम्बल ओढ़े चुपचाप बैठा रहा। प्रकाशहीन चंद्रमा को उसने बर्फ़ानी चोटी पर यों अटका हुआ पाया जैसे उसे फांसी पर टांग दिया गया हो। और पायल की झनकार पर उसे वनदेवियों के नाच का संदेह हुआ।

एक-एक दो-दो कर के काफ़िर स्त्री-पुरुष आते गये और एक पहर रात बीते तक भीड़ सी लग गयी। पुरुष ऊनी लबादे ओढ़े हाथ में भाला या बरछी लिये हुए थे। औरतों के लबादे कमर पर पटे से कसे हुए और उनके सिर ऊनी रुमालों से ढंके हुए थे, जिन में रंग बिरंगे पत्थर जड़े हुए थे। गोरे-गोरे पैर जंगली मेंहदी से लाल-गुलाल। बड़ी बड़ी आँखों पर काला सा घेरा था जो बकरे के सींग की लेप से बनाया गया था। जवानी से डबडबाये हुए स्वस्थ शरीर इन तंग लबादों के अंदर तिलमिला रहे थे।

जब वह जमा हो गये तो उन का मुखिया वयोवृद्ध मलंगशाह उठा और एक मशाल लिये हुए कब्रिस्तान की ओर गया जो इस मैदान के पास ही था। औरतें मुंह मोड़ कर एक कोने में खड़ी हो गयीं और मर्दों ने नगाड़े की चोब पर हो-हो-हो का नारा लगाया। औरतों ने धीमे सुरों में कोई गीत शुरू किया। थोड़ी देर में मलंगशाह

लकड़ी की एक मूरत कांधे पर उठाये हुए पलटा और इस मूरत को देखते ही सब स्त्री-पुरुषों ने धरती पर माथा टेक दिया। फिर मर्द हवा में भाले हिलाते हुए अग्नि-परिक्रमा करने लगे और औरतों ने अपने गीत की लय तेज़ कर दी। ईशान देवता की मूरत चुनार के तने का टेका लगा कर बिठला दी गयी।

एकाएक छागलों के घुंघरू एक साथ झनक उठे। सारी बर्छियाँ बिजलियों के समान हवा में लपकीं। नगाड़ा जल्दी-जल्दी अजगर साँप की तरह साँस लेने लगा। अलाव के चारों तरफ मर्दों के पैर धमाधम ज़मीन को कूटने लगे। पर औरतों ने धीमे से धरती को ठोकर लगायी जैसे उसे चूम रही हों। दो काफ़िर बूढ़ों ने जो ईशान देवता के पुजारी मालूम होते थे, झूम-झूम कर कोई भजन गाना शुरू किया। देखते-देखते उन सब पर जोश की ऐसी हालत तारी हुई जैसे वह अभी अपनी परम्परा को पुनर्जीवित कर के आदमियों को आग में झोंक देंगे और फिर उनकी खोपड़ियों के हार बना कर पहिन लेंगे। क्षण भर के लिये तो मुसाफिर भी हक्का-बक्का रह गया। उसे विश्वास न हुआ कि वह अफ़गानिस्तान की सीमा पर सभ्य संसार से काले कोसों दूर इन जंगली काफ़िरों का मेहमान है। जो नाचने वाला थक जाता, वह घड़ी भर के लिये देवता के आगे शीश नवाता। फिर फूलों की शराब की कुप्पी में मुंह लगा कर दोबारा इस तांडव नृत्य में शामिल हो जाता था। गीत की लय के साथ आग की लौ भी भड़कती गयी और हो-हो-हो का कर्णभेदी कोलाहल प्रलय नाद के समान वातवरण में गूंज उठा।

मुसाफ़िर देश-विदेश के बहुत से नाच देख चुका था। पर किसी

नाच में उसने यह आवेश, अनुभूति और उन्माद न देखा था। वह सब बंसतराज ईशान के संकेत पर मरने-मारने को तैयार थे और उनकी समझ में न आता था कि अपनी श्रद्धा का प्रदर्शन कैसे करें। रात में ठंड समायी हुई थी, पर वह सब पसीने में शराबोर हो गये थे, और नवयौवनाओं के मनमोहक मुखड़ों पर जैसे मोती की झालर लटक रही थी।

मलिक शाह ने मुसाफ़िर को बतलाया कि यह देवताओं का देश है। कोई कहता है कि ये लोग सिकन्दर के भटके हुये सिपाहियों की औलाद हैं और कोई उन्हें प्राचीन आर्यों का नामलेवा बतलाता है। पर सचमुच वह देवताओं के पानी देवा हैं और हज़ारों साल से यहीं रसते-बसते हैं। उन्होंने तातारों, तुर्कों और अफ़ग़ानों के कबीलों को आते-जाते और बड़ी-बड़ी सभ्यताओं और साम्राज्यो को बनते बिगड़ते देखा है। पर इन परिवर्तनों का इन काफ़िरों पर उतना ही असर हुआ जितना इन पहाड़ों पर।

यह बातचीत अभी जारी थी, कि एक सुन्दरी भीड़ चीर कर देवता की मूरत के आगे आ खड़ी हुई। उसने ज़मीन की मिट्टी उठाकर आँखों में लगायी और ताली बजाकर हाथ हवा में फैला दिये। तालियों की गत परउसने नाचना शुरू किया। वह अपने देवता को रिझाने के लिये नाच रही थी। गर्दन से लेकर एड़ी तक उसका बदन एक लबादे में छिपा हुआ था। पर नाचते हुये, वह यों मचला जैसे अभी नङ्गा हो जायेगा। छल्लों में छिपी हुई उसकी उँगलियाँ तीरों की नोक की तरह हवा में थरथरायीं। उसके सुडौल पैर कभी डगमगाये, कभी थिरके, कभी कसमसाये। अपनी वेणी

से उसने लाल फूलों का गुच्छा निकाला और उसे हथेली में लिये मूरत की ओर बढ़ी। हौले-हौले उसके पैर उठे, फिर फूल मूरत के आगे रखकर वह खुशी से उछली और उसका मुखड़ा दमक उठा! वह फुर्ती से हाथ पाँव यों नचाने लगी मानों अभी तितली बन कर उड़ जायेगी, और उसी समय एक ऊँचा पूरा युवक बल्लम हिलाता हुआ उसकी ओर लपका। अपने सिर और छाती को उसने हरी-भरी टहनियों से ढंक रखा था। उसकी आन-बान से मुसाफ़िर समझ गया कि वह ईशान देवता का पार्ट अदा कर रहा है। अब दोनों गलबहियाँ कर के एक गत पर नाचने लगे और सब ने हाथ में हाथ डाल कर उनका घेरा कर लिया।

मुसाफ़िर के पथ प्रदर्शक मलङ्ग ने चुपके से कहा: "जानते हो, यह सुन्दरी कौन है? यह मलिकशाह की घेवती गुलून है। इस साल यह जवान हुई है और अपनी जवानी का ऐलान करने के लिये नाच रही है पर उसका साथी मलिकशाह के बैरी नामदार का ग़ुलाम 'गाश' है। सदियों से गाश का कुनबा नामदार के घराने की ग़ुलामी करता आया है। दिल में दोनों लाख एक दूसरे को चाहें पर अपने प्रेम को इस तरह जग-ज़ाहिर नहीं करना चाहिये।"

मलङ्ग काफ़िरों का बूझ-बुझक्कड़ था। अपने कानों में सोने का बाला डाले, मख़मल का फटा हुआ शलूका पहने, पुरानी-सी बन्दूक बारूद के खलके के साथ पीठ पर लादे उसका व्यक्तित्व ही निराला था। वह काफ़िरों का भाट, सरपञ्च, सलाहकार सब कुछ था अब बसन्त ऋतु में जब काफ़िर अपने मवेशियों को चराने के लिये जङ्गलों में छोड़ देंगे तो मलङ्ग उनकी रखवाली करेगा। बम्बरेत और

अफ़ग़ानिस्तान के बीच में बस इस पहाड़ की ही ओट तो थी। उसके दर्रों से होकर जब अफ़ग़ान मवेशी-चोर उनके मवेशियों को चुराने आते तो मलङ्ग से उनकी अच्छी ख़ासी मुठभेड़ हुआ करती थी।

मलङ्ग की चिलम में गाँजा था या चरस या तम्बाकू—मुसाफ़िर के लिये यह समझना असम्भव था।

ताबड़तोड़ उसके कश लगाते और खाँसते हुये बीच बीच में अपनी लाल-लाल आँखों से टपकते हुए पानी को मैली आस्तीनों से पोंछते हुए, मलङ्ग ने कहा : 'अभागा गाश आप अपनी जान का लागू है। मलिकशाह काफ़िरों का पुजारी है। उसकी घेवती से यह दास-पुत्र ब्याह नहीं कर सकता। जब तक कोई दस घोड़े, पचास गायें और सौ बकरियां न लाये, गुलून से ब्याह कैसे कर सकता है। पर गाश के सिवा कोई और इस छोकरी की आँखों में जँचता भी तो नहीं। नौरोज़ के त्योहार मे वादी की सब जवान लड़कियां मारा देवता के मंदिर के आगे आ बैठती हैं। कुंवारे आते हैं और जो जिसे पसंद हो उसे अपनी संपत्ति का ब्योरा सुनाते हैं। यहां सोने-रूपे का कोई मोल नहीं। ज़मीन और मवेशी ही असल जायदाद हैं। अगर कोई लड़की किसी का हाथ पकड़ ले तो समझ लो कि मंगनी हो गयी। पिछले नौरोज़ को कई कुंआरे गुलून से शादी करने को आये। मगर उसने किसी की तरफ़ आँख उठा कर भी न देखा। उसे तो गाश के सिवा कोई भाता ही नहीं।"

मलंग ठीक कहता था। क्योंकि वह दोनों सुध-बुध बिसार कर यों नाच रहे थे गोया वहाँ कोई तीसरा था ही नहीं। दोनों के शरीर एक दूसरे की प्यास में तड़फ रहे थे। लेकिन और सब की आँखों में

क्रोध झलक रहा था। देवता और मेहमान की मौजूदगी के कारन अनिच्छापूर्वक सब चुप थे।

जब तक नाच होता रहा, मुसाफिर टकटकी बांधे गुलून को ताकता रहा। नाचते हुए वह कभी फूल की तरह खिली, कभी नागिन की तरह लहरायी, कभी पहाड़ी नदी की तरह गुनगुनायी। और मुसाफिर उसे देखता रहा, देखता रहा। गुलून ने भी उस पर एकाध उचटती हुई नज़र डाली थी। अपनी सहेली नमकी को कोहनी मार कर वह मुस्कुरायी भी थी। फिर अपने देश की रीति के अनुसार दो उँगलियों के बीच से आंख दिखा कर स्नेह का संकेत भी किया था।

× × ×

मलंग ने मुसाफिर को झिंझोड़ा तो उसकी आँख खुली। धूप फैल चुकी थी और मलंग के टूटे हुए दांतो में हँसी फिसल रही थी। "खेल चुके तुम मारखोर का शिकार। उठो, बहुत सो चुके।"

पल-भर मुसाफिर की समझ में न आया कि वह कहाँ है। किसी काफ़िर के घर के ऊपरी हिस्से में वह ठहराया गया था। कमरे के बीचोंबीच एक चूल्हा था जो अँगीठी, तंदूर और लैंप का काम भी देता था। नीचे उतरने के लिये लकड़ी की एक उठाऊ सीढ़ी लगी हुई थी जो ऊपर खींची जा सकती थी ताकि वैरी या डाकू न चढ़ पायें।

औरतें घरों या खेतों में काम कर रही थीं और मर्द शिकार खेलने, फल तोड़ने या शहद जमा करने बाहिर निकल गये थे।

मुसाफिर की आँखें इधर-उधर किसी को ढूँढ़ती चलीं। उसने

अपने दिल को गुम-सुम पाया और समझ न सका कि ऐसा क्यों है। चलते-चलते उसने गाश को देखा जो एक आँगन में बैठा मिट्टी के बर्तनों को अपने हाथ में नचाता और फिर उनसे प्याली या सुराही बना कर धूप में रखता जाता था। मुसाफिर को देख कर उसकी आँखें मुस्कुरायीं और वह रात के बिछुड़े हुए मिलन की याद में मगन हो गया।

मलंग तेज़ कदम चल रहा था। पत्तियों पर मिटी हुई ओस को देख कर कहता कि इधर से लोमड़ी गयी है। कभी टीलों पर बनी हुई समाधियों की ओर इशारा कर के कहता कि इनमें हमारे पुरखे सो रहे हैं। जब कोई काफिर मरता है तो लाश के साथ उसके गहने-कपड़े भी गाड़ दिये जाते हैं। पहिले तो उन्हें कोई हाथ भी न लगाता था। लेकिन जब से लाल काफ़िर मुसलमान हुए हैं इन समाधियों का सफाया हो गया है।

मारख़ोर की धुन में मलंग एक सूखे हुए नाले के पत्थर पर उछलता कूदता चला जाता था। अचानक कोई बात याद आयी तो वह बोला "मुसाफिर काश हमें ऐसा मारखोर मिल जाये जिसके पेट में मनका छिपा हुआ हो। मनका नाग तक के ज़हर को पल भर में चूस लेता है। उसे दिखला कर तू राजा की बेटी को भी मोह सकता है।"

इतने में उसकी आंख में शरारत चमकी और वह आप ही आप खिलखिला कर हँस पड़ा! "रात को मैं तेरी आँखों को ताड़ रहा था। तूने गुलून को पसंद किया, ऐं?"

अख़रोट के पेड़ की छाया तले दोनों बैठ गये। मुसाफिर ने

सिगरेट और मलंग ने चिलम सुलगायी। मलंग कहने लगा: "इसमें हर्ज भी क्या है। मेहमान हमारी किसी चीज़ को पसंद करे तो हमें गर्व होता है। दस घोड़े, पचास गायें और सौ बकरियों के दाम सात आठ सौ रुपयों से अधिक नहीं। तू गुलून को ब्याह कर यहीं बस जा। यह जंगल-पहाड़ तुझे दहेज में दे देंगे।"

"नहीं, मलङ्ग! गुलून और उसका देश कितना ही सुन्दर हो, पर न मैं उनके लिये हूँ और न वह मेरे लिये।"

टोह लेने के लिये मलंग झूटमूट झुँझला कर बोला: "हूँ, मैं जानता हूं। न तेरा देश अच्छा है, और न वहाँ गुलून जैसी औरते होती हैं!"

मलंग उसे छेड़ता गया: "पेशावर तक तो मैं भी जा चुका हूँ। मैं जानता हूँ कि तू ऊँचे मकानों और साफ़ सड़कों को पसंद करता है, लेकिन उनके साथ गंदी गलियाँ और तंग झोपड़ियां भी तो हैं। तेरे देश की औरतें या तो ब्याह करके परदे की आड़ में बच्चे जना करती हैं और या दाम ले कर या बेदाम बेसवा बन जाती हैं। तू हमारी बेटियों की मर्यादा को क्या समझे।"

मुसाफिर मौन साधे रहा। फिर भी मलंग समझ गया कि उसके मन में क्या है। वह इन काफ़िरों को असभ्य समझता है और इनके जीवन पर हँसता है। इस ख्याल से मलंग की चेतना में सोयी हुई सैकड़ों देवताओं की हजारों साल पुरानी आत्मा बिफर पड़ी और वह सचमुच बिगड़ कर बोला: "तुझे अपनी रेलों, मोटरों और हवाई-जहाज़ों पर घमंड है। उन्हें देखे बिना तू जो नहीं सकता। पहाड़ों, नदियों और जंगलों से वह तुझे अधिक भाते हैं। वह तेरी सभ्यता

और उन्नति के प्रतीक हैं। पर यह तो बतला कि इस उन्नति का दाम तू किस तरह चुकाता है? अय्यून के पोस्टमास्टर के पास एक अख़बार आता है। हर महीने जब मैं नमक और चाय ख़रीदने अय्यून जाता हूं तो वह अख़बार पढ़ कर मुझे सुनाता है। उसमें लड़ाई, काल और बीमारी की ख़बरों के सिवा कुछ नहीं होता। पर तेरी आत्मा तो इतनी पतित है कि उनसे अलग जी नहीं सकती।"

मलंग अभी न जाने क्या क्या कहता। पर उस समय दाहिनी ओर सरसराहट सी हुई। दोनों एक पेड़ की आड़ में दबक गये और उन्होंने देखा कि एक चट्टान पर खुर जोड़े एक मारख़ोर खड़ा हुआ है। उसके लम्बे लम्बे चक्करदार सींग बड़े भले लगते हैं। और वह अपनी भरी भरी गरदन उठाये सूरज की तरफ़ देख रहा है। अपनी रेशमी दाढ़ी को वह रह रह कर हिलाता है और उसके नथने फड़क फड़क कर उसे वातावरण के हर परिवर्त्तन की सूचना दे रहे हैं। मुसाफिर की उँगली बन्दूक की लबनी पर दबी। पर मारख़ोर एकाएक एक चट्टान से दूसरी पर उचका। और इसी तरह चट्टानों पर चौकड़ियां भरता गया। जब बन्दूक दगी तो हैरानी से एक बार पीछे देख कर वह पहाड़ की एक दरार में घुसा और ग़ायब हो गया। कुछ देर गोली की आवाज़ कभी यहां कभी वहां गूँजी। मरमटों ने क......र.......र...... र के लगातार कर्कश वाद से आकाश सिर पर उठा लिया। एक दो पहाड़ी गिद्ध अपने घोंसलों को छोड़ कर हवा में उड़ने लगे।

× × ×

लौटते समय मुसाफिर ने गुलून को देखा। वह मैदान में बैठी

अपने कुत्ते के बालों में पिस्सू टटोल रही थी। कुत्ते ने आनन्दातिरेक से आँखें बन्द कर ली थीं। उसकी खाल कभी कभी सिकुड़ जाती और उसकी धीमी-धीमी गुर्राहट में संतोष का संकेत था। बकरियाँ और गायें इधर-उधर चर रही थीं। बीच बीच में वह गुलून की ओर मुड़ कर देख लेती थीं कि वह अपनी जगह पर है या नहीं।

मुसाफिर से आँखें चार होते ही वह अल्हड़पन से घास के तिनकों को नोचने लगी और उसके ओठों पर हलकी सी मुस्कुराहट आ गयी। मलंग को उसने अपनी बोली में सलाम किया और उसकी छेड़छाड़ का जवाब थोड़ी सी झिड़की में दिया। मुसाफिर ने उसकी झुकी हुई चितवनों को अपने क़दमों का पीछा करते पाया और इस अहसास से उसकी टाँगों में झुरझुरी सी दौड़ गयी।

पहाड़ी नाले के ठंडे पानी को उंगलियों से टहोकते हुए वह सोच में पड़ गया। कितनी अजीब बात है कि वह इस वादी को सपनापुरी समझता है। यहाँ से लौट कर वह फिर अपनी तंग और अंधेरी दुनिया में चला जाना चाहता है जहां कपट और कुरूपता के सिवा रखा ही क्या है। क्या गंदगी और सड़ाँद में भी कोई रस होता है, जिसका विष मनुष्य की नस नस में रम जाता है। और गोबरीलों व तिलचट्टों के समान वह उसी मिट्टी में उगता और उसी में जीवित रह सकता है। क्या सभ्यता ने हमें ऐसा बना दिया है कि जब तक शरीर और आत्मा के पतन का तमाशा न देखें, तब तक हमें चैन नहीं मिल सकता? अगर ऐसा नहीं है तो मुसाफिर को इस वादी में बसने का ख़्याल नापसंद क्यों है। वह अपने मनोभाव के विश्लेषण की असफल चेष्टा करने लगा बचपन में जङ्गल का राजा बनने और

जङ्गल की परी से प्रेम करने की भावना कितनी दिलचस्प थी। पर आज जब वह स्वप्न संभव हो सकता था तो वह झिझक क्यों रहा है। उस सभ्य संसार से उसे लेना भी क्या था। मनुष्यों से उसे दुख-दर्द के सिवा मिला ही क्या था ? वहाँ की रोटियों में शारीरिक और मानसिक रोगों के कीड़े बिलबिला रहे थे—और वह सब बीमार थे—सभ्यता के बीमार !

सम्भव है कि बात यही हो और या यह हो कि मुसाफ़िर केवल देखने में इन काफ़िरों का सा आदमी था। वरना उन में दो हज़ार साल का अन्तर था। इस अन्तर का ज्ञान चेतना को नहीं हो सकता। क्योकि समय की गति को समझने का बूता चेतना में नहीं। बल्कि चेतना से परे शरीर के नामालूम तलघरों में छिपी हुई शक्तियों को ही काल का रहस्य मालूम है।

मुसाफ़िर बस इतना कह सकता था कि वह इन लोगों से अलग है। वह गुलून के साथ हमेशा नहीं रह सकता क्योंकि अगर गुलून की अवस्था सोलह साल है तो उसकी अपनी उम्र दो हज़ार सोलह साल। और न वह इन पहाड़ों में सदा रह सकता है, क्योंकि अगर उसकी अपनी अवस्था तीस साल है तो इनकी दो लाख तीस साल !

× × ×

कल सबेरे मुसाफ़िर चला जायेगा। अभी अभी उसने अपने काफ़िर दोस्तों से बिदा ली है और भेंट में उन्हें आईने, बटुवे और रंगीन रूमाल दिये हैं। अपना सामान बन्द करते हुए वह सोच में पड़ जाता है कि इसका बोझ ज़्यादा है या मेरे दिल का।

गुलून की याद वह अपने मन से नहीं निकाल सकता। लेकिन उसे वह इस वादी से अलग भी नहीं करना चहता। वह आजीवन इस विचार से संतोष प्राप्त करना चाहता है कि गुलून सदाबहार फूल की तरह अपने पहाड़ों में महक रही है। काल अगर कहीं मिले तो उससे वह कहना चाहता है कि इसे हमेशा जवान रहने दे। चारपायी पर बैठे बैठे वह सोचता है कि जब मोमबत्ती बुझ जायेगी तो मैं जाऊँगा। और उसी पल मोमबत्ती की लौ भड़क कर बुझने लगती है, दरवाज़ा अपनी चूल पर चरमराता है। मलंग हाँफता हुआ चौखट पर खड़ा है और उसकी आँखों में आँसू हैं।

"मुसाफिर," उसने भर्राई हुई आवाज़ में कहा, "वह लोग गाश को मार रहे हैं"। मुसाफिर उछल पड़ा और उसी दम मोमबत्ती बुझ गयी।

"शाम को वह गुलून से मिलने खेत पर गया। सलमी उन दोनों की ताक में था। दोनों पकड़े गये। अब कब्रिस्तान के सामने मारा देवता के आगे पंचायत उन दोनो को सज़ा देने के लिये जमा हुई है।"

मुसाफ़िर को जैसे काठ मार गया हो। उसके हर रोयें ने पुकार कर कहा कि "भागो;" मगर मलंग ने उसका हाथ पकड़ लिया: "मुसाफ़िर तू गाश की जान बचा सकता है" और उसे बाहिर की ओर खींचने लगा।

कब्रिस्तान के निकट चुनारों के झुरमुट में आग जल रही थी। पर उसमें कल रात की सी गरमा-गरमी न थी। उदास-उदास और बुझी-बुझी सी आग। उसकी फीकी सी रोशनी मारा देवता की

मूरत पर पड़ रही थी। काठ की बनी हुई यह मूरत कब्रिस्तान का पहरा दिया करती थी। उसके सामने बूढ़े काफ़िर घुटने टेके बैठे थे। बीच में एक खम्भे से गाश बँधा हुआ था। उसके पैरों के पास एक लहूलुहान घायल बकरा पड़ा हुआ भयावनी आवाज़ में कराह रहा था। मालूम होता है कि उसे घायल करके छोड़ दिया गया था। गुलून का निराश प्रेमी सलमी ज़मीन से चुल्लू भर ख़ून उठा उठा कर गाश पर छिड़क देता था। मारा देवता के सामने गुलून औंधी लेटी हुई थी; और जब बकरे की चिल्लाहट बन्द हो जाती तो उसकी सिसकियाँ सुनायी देने लगती थीं।

थोड़ी दूरी पर मुसाफ़िर को रोक कर मलंग ने कहा 'देवता की पूजा में कोई अजनबी शामिल नहीं हो सकता। तू यहीं छिप कर तमाशा देख। जब मलिकशाह देवता से बातचीत शुरू करे तो उसके पास जा और गाश के प्रानों की भीख मांग।"

देर तक बकरा तड़फता और कराहता रहा और सलमी उसके लहू के छींटे गाश पर छिड़कता रहा। गुलून चुप हो गयी और शायद थकी हुई हालत में उसके शरीर को नींद आ गयी। मलिकशाह ओठों ओठों में अविराम गति से कोई मन्तर जपता रहा। इतने में बकरा अन्तिम बार चिल्लाया और तड़फ कर मर गया। उसी समय सब लोग उठ खड़े हुए और 'मारा मारा!' के नारों से हवा गूँज उठी। सलमी किसी पेड़ की आड़ में छिपी हुई खोपड़ियों की माला उठा लाया। वह खोपड़ियाँ जो उसके पुरखों ने बैरियों की लाशों में से निकाली थीं। यह हार गले में डाल कर सलमी भाला हिलाते हुए गाश की ओर झपटा और फिर मरघट के भूत की तरह

नाचने लगा। उसके भाले के इशारे पर कभी गुलून डर के मारे चिल्लायी और एकाध बार तो गाश भी घायल बकरे के समान आर्त्तनाद कर उठा। बाकी सब लोग 'हो-हो-हो' और 'मारा-मारा' की टेक पर इस नाच पर ताल देने लगे।

मुसाफिर इस ख्याल से सहम गया कि कहीं भाला गाश के शरीर में चुभ न जाये। पर मलंग ने उसे दिलासा दिया। अभी मलिकशाह ने देवता की अनुमति नहीं ली है। मलंगशाह ने उसे समझाया कि इन लोगों का पाप बड़ा संगीन है। एक तो मंगनी से पहिले इनका एकांत में मिलना। फिर वह पुजारी की पुत्री और यह दासपुत्र। सब से बढ़ कर उन्होंने मिलन के लिये देवता के मंदिर को चुना।

मलिकशाह के हाथ उठाते ही नाच बन्द हो गया और मौत का सा सन्नाटा छा गया। अभी मलिकशाह ने देवता की सेवा में अपना निवेदन आरम्भ ही किया था कि किसी के पांव की चाप सुनायी दी। वह हैरानी से चौंक पड़ा और मलंग से पूछा कि मेहमान चाहता क्या है।

मेहमान ने मारा देवता की पदधूलि शीश चढ़ायी और गुलून के विनीत नयनों ने उसका हियाव बढ़ाया। वह बोला : "कल मैं यहाँ से चला जाऊँगा ; और मेरा देश इतनी दूर है कि फिर शायद कभी न आ सकूँ। मैं चाहता हूं कि इन दिनों की याद मेरे मन से कभी न भूले, और इस याद में विषाद की कोई खटक न हो—।" वह जानता था कि यह बात बिलकुल बेबुनियाद है, क्योंकि जिस हर्ष में विषाद की झलक न हो, वह हर्ष ही कैसे रह सकता है ?

मलिकशाह ने जवाब दिया : "मलंग, मेहमान से पूछो कि वह चाहता क्या है। अतिथि-सेवा हमारे धर्म की रीति है।"

"मैं चाहता हूँ कि गाश की जान न मारी जाये।"

हर आदमी अपनी-अपनी जगह भन्ना उठा। और इस भिन-भिनाहट में प्रतिवाद की ध्वनि स्पष्ट थी। मलिकशाह के आदेश पर सब चुप हो गये। और वह देवता के आगे झूम-झूम कर अपनी बोली में देर तक कुछ कहता रहा। कभी वह अपने कान मूरत के मुँह के पास लाता जैसे उसकी आवाज़ सुन रहा हो, कभी उसकी विनती करता, कभी चुप हो जाता। थोड़ी देर बाद वह उठ खड़ा हुआ और सब लोग 'मारा-मारा' कहते हुए दोबारा मूरत के आगे झुक गये।

मलिकशाह ने बड़ी शान से एक एक शब्द तौलते हुए कहा : "इस ग़ुलाम की सज़ा मौत के सिवा कुछ नहीं! लेकिन—।" इस 'लेकिन' पर सलमी और उसके साथियों के मुँह उतर गये। लेकिन, मेहमान ने यहां आने के बाद केवल एक अभिलाषा प्रकट की है। और हमारी यह रीति नहीं कि उसका अपमान करें।"

मलंग खुशी के मारे उछल पड़ा और जल्दी जल्दी गाश के बन्धन खोलने लगा : "ठहरो," मलिकशाह की बूढ़ी आवाज़ कड़की, "गाश अब हमारे इलाके में न रह सकेगा। मुसाफिर दाम अदा कर के उसे मोल ले ले, फिर उसे चाहे छोड़े या पास रखे।"

गाश को विषाक्त चितवनों से घूर कर उसने कहा : "अगर तुमने कभी इस वादी में घुसने का साहस भी किया तो याद

रखो कि मारा-देवता के मंदिर की दीवार में जिंदा चुन दिये जाओगे।"

फिर उसने कठोरता से गुलून की ओर देखा, जो रौंदी हुई टहनी की तरह अब तक ज़मीन पर पड़ी हुयी थी। बूढ़े के इशारे पर वह उठी और किसी ने उस पर सौंदर्य की ऐसी आभा न देखी थी जैसी इस समय थी।

"अगर तू सलमी से ब्याह कर ले तो देवता तेरे पाप को भूल जायेगा।"

गुलून का आँसुओं से भीगा हुआ चेहरा पत्थर के समान कठोर हो गया और उसने सिर हिला कर साफ़ इनकार कर दिया।

"गाश के सिवा तुझे कोई और काफ़िर पसन्द है?"

गुलून के मुँह से साफ़ आवाज़ निकली—"नहीं।"

"तू जानती है कि देवता के आगे नाहीं करने के बाद तू आजीवन किसी पुरुष के साथ न रह सकेगी?" गुलून की गर्दन ने इशारा किया कि हाँ मैं नतीजे को जानती हूँ।

"तो फिर मुझे कुछ नहीं कहना है।"

अचानक मलंग ने झुक कर मलिकशाह के कान में कुछ कहा और बूढ़े ने विस्मयभरी दृष्टि से मुसाफिर को ताक कर लड़की से सवाल किया—"मेहमान अगर यहीं बस जाये तो तू उसे पसन्द करेगी?"

मुसाफिर का दिल बल्लियों उछल पड़ा, और उसे ऐसा लगा कि यह घड़ी हज़ारों साल की दूरी तै कर रही है। और उसकी आत्मा

सभ्यता की जिन बेड़ियों से जकड़ी हुई है वह यों टूट रही हैं, जैसे भूकंप में सैकड़ों हज़ारों साल पुरानी इमारतें एक आन में धराशायी हो जाती हैं। वह हैरान रह गया कि अपने जीवन का स्वामी वह आप नहीं, बल्कि उसकी स्वामिनी यह अल्हड़ लड़की है जो अभी भी लकड़ी की एक कुरूप मूरत के आगे पड़ी बिलख रही थी।

गुलून ने मुसाफिर को उदासी से देखा। उसकी भोली आँखों ने परदेशी से कुछ पूछा। फिर उसकी गरदन दायें-बायें हिली और उसके काँपते हुए ओठों ने कहा—"नहीं!!"

—०—

दिल का अंधेरा

[यूरोप से मैं यह महायुद्ध छिड़ने के कोई छः महीने
बाद लौटा। इसके थोड़े दिनों बाद ही फ्रांस की
हार हो गयी। कहानी युद्धकालीन फ्रांस
के वातावरण से प्रभावित हो कर
लिखी गयी थी।

जब रेल की चाल एकाएक सुस्त पड़ गयी और किसी ने हवा में नीली कंदील हिला कर "गार देस्तपारी" * आवाज़ लगायी, तो आँद्रे चौंक पड़ा। खिड़की से उसने सिर निकाल कर देखा कि चारों ओर अंधेरा घुप है, और उजाले के नाम पर बस बर्फ़ के वे गाले हैं जो आकाश से लगातार टपक रहे हैं।

आँद्रे को विश्वास न हुआ कि यह उस पेरिस का स्टेशन है जिसे ज्योति-नगरी † कहा जाता था। माना कि लड़ाई के दिन हैं। उसे यह याद दिलाने की ज़रूरत न थी, क्योंकि वह खुद लड़ाई के मैदान से हफ़्ते भर को छुट्टी पर आ रहा था। पर यह सदारोशन शहर निरन्तर अंधकार में किस तरह जीवन-यापन कर रहा था। आँद्रे को आप ही आप अपनी उस पड़ोसिन का ध्यान आया जो

* पेरिस का पूर्वी स्टेशन।

† सिटी आफ़ लाइट—पेरिस का उपनाम

प्रेम के समान सुन्दर थी। पर कई साल बाद जब उसे देखा तो उसकी जवानी ढल चुकी थी, कौमार्य के साथ सौन्दर्य भी विदा हो चुका था। झुर्रियाँ चेहरे पर चलचलाव की झंडी हिला रही थीं। अपने नगर के सन्नाटे और अंधेरे को देख कर आंद्रे को वैसा ही झटका लगा और वह देर तक दम साधे खिड़की का सहारा लिये खड़ा रहा। महीनों बन्दूक छतियाये वैरी के सामने खड़े हुए भी जो बात उसकी समझ में न आयी थी वह इस अंधे और अंधेरे शहर को देखते ही साफ हो गयी। हाँ, यह सचमुच का युद्ध था—आदमियों के दो जत्थों के बीच, जो एक खिंची हुई लकीर के आर-पार खड़े उस क्षण की प्रतीक्षा कर रहे थे जब उन्हें एक दूसरे को मारने का हुक्म मिलेगा। और उनमें सब से बड़ा कर्त्तव्यपरायण वह होगा जो सबसे ज्यादा आदमियों को मार डाले।

रेल धीरे-धीरे चलती और रुकती हुई कुछ देर के बाद प्लेटफ़ार्म पर आकर खड़ी हो गयी। स्टेशन में गहरा धुंधलका था। इधर उधर बिजली के लैम्प नीली ओढ़नियों में सिर छिपाये खड़े थे। आने जाने वाली गाड़ियों का कोई समय नियत न था, जिसे जब मौक़ा मिलता, आ जाती।

फिर भी बड़े दिन आ रहे थे, और थोड़े से सौभाग्यवान सिपाहियों को इस अवसर पर आने की अनुमति मिली थी। उनके नातेदार यह तो न जानते थे कि वे कब आयेंगे और अगर आये भी तो अंधेरे में किस तरह पहिचाने जायेंगे। फिर भी वे आस बांधे हर फाटक पर खड़े बाहर से आने वाले यात्रियों को टार्च की रोशनी में निहार रहे थे।

आंद्रे इस भीड़ में घुस कर बड़ी कठिनाई से बाहर निकला। सूखे पेड़ो और सपाट छतो पर बर्फ़ की परते जम गयी थीं इस साल सड़कों को साफ़ करने का कोई प्रबन्ध न था, इसलिये बर्फ़ के ढेर हर तरफ़ जमा थे और आँख चूकते ही पथिक फ़िसल कर मुँह के बल गिर पड़ते थे।

हिमपात् का सिलसिला था कि टूटने का नाम न लेता था। स्टेशन के बाहर मौत की सी ख़ामोशी थी। पहिले तो आँद्रे के जी में आया कि कोई सवारी ले और अपने मुहल्ले की राह पकड़े, पर पास से सेन नदी की गीत-लहरी सुनायी दे रही थी। वह उसके बचपन की कहानी गुनगुना रही थी, जब वह नदी किनारे के एक गाँव में रहता और उसके पानी में नहाया करता था। आंद्रे सूट-केस उठाये और कम्बल काँधे पर डाले हुए उस ओर चला और पुल की एक बेंच पर बैठ गया। नदी का पानी बेरङ्ग था और उस पर बर्फ़ की पपड़ियाँ तैर रही थीं। नदी की लहरों पर सदियों का इतिहास लिखा हुआ था, और आसपास के अंधेरे को देख कर उस पर उदासी और हैरानी का कोहासा छाया हुआ था। अभी कुछ महीनों की बात है कि सड़कों और इमारतों से रंग-बिरंगी किरणें निकल कर उसकी लहरों पर तैरा करती थीं। चाँदनी रातों में नौकाएँ उसकी गोद में नाचतीं और तट पर आश्रयहीनों या प्रेमियों का मेला लगा रहता था। देखते ही देखते यह क्या हो गया। जो भी हो यह अनश्वर नदी काल की गति से भली-भाँति परिचित थी। जिस देश के हृदय को चीर कर उसकी राह गुज़रती थी, उसे वह प्रथम दिन से जानती थी। और बहते बहते जब उसकी गहराइयों से ख़ून की वे

बूँदे छलक आतीं जो यहाँ रहने वालों की तलवार से टपकी थीं, तो दरिया जोश में आता और उसका प्रवाह तेज़ हो जाता।

आंद्रे बहते हुए पानी की रागिनी को ख़ूब समझ सकता था, क्योंकि उसके अपने शरीर की महक, उसकी अपनी आवाज़ की लहक इसमें छिपी हुई थी। तबीयत के भारीपन को झटक कर उसके दिल ने कहा —नहीं यह नगर अमर रहेगा क्योंकि उसकी काया चाहे ईंट पत्थर से बनी हो, पर उसकी आत्मा अमर-ज्योति में सनी हुई है और अगर वह आज बिगड़ गया तो कल फिर बनेगा।

जब उसकी आँखों को अंधेरे में देखने का अभ्यास हो गया, तो आसपास कुछ और लोग दीख पड़े जो उसी के समान नदी से बातें करने आये थे। वे सब पुल के खम्भों को थामे सिर झुकाये खड़े थे, और उनके मौन में अथाह-व्यथा सिसक रही थी। अचानक आंद्रे को उस वादे की याद आयी जिसे पूरा करने के लिये वह यहां आया था। पेड़ों के झुरमुट में उसके पाँव के पास एक लाश पड़ी है। अपनी टोली के साथ वह बैरी की टोह लेने निकला था। हवा बर्फ़ में घुली हुई, चाँदनी कोहासे में सनी हुई। बहुत दूर जहाँ धरती व आकाश में गलबहियाँ होती है, बैरी ताक लगाये बैठा है। दोनों चाहते हैं कि मौक़ा मिलते ही एक दूसरे पर टूट पड़ें और ज्यादा आदमियों को कम से कम समय में मार डालें। उनकी सारी तत्परता बरबादी के हथियारों के उपयोग में लगी हुई है। अगर उनका बस चले तो वे अपने नाख़ूनों को बढ़ा लें, अपने दाँतों को तेज़ कर लें और चौपायों की तरह एक दूसरे को फाड़ खायें। आंद्रे की समझ में

न आया कि ऐसा क्यों होता है। बन्दूक पर उसकी उँगली हिलती है। एक गोली हवा को चीर कर किसी अनजान आदमी की देह में घुस जाती है, वह मर जाता है और उसके सम्बन्धियों के नाम युद्ध-देवता की ओर से धन्यवाद का संदेश आता है। पड़ोसी उन्हें देख कर समवेदना से सिर हिलाते हुए कहते हैं कि बेचारे देश के लिए दुख झेल रहे हैं।

यह अधमरी लाश जिसकी थी आंद्रे उससे अपरिचित था। उसकी आंखों में अरमान की दुनिया बसी हुई, आशा उसके होठों पर मुस्कुराती हुई। जब रात को वे पहरे पर निकले तो नवयुवक अपना हाल सुनाने लगा। पेरिस के अमुक स्थान पर उसकी दूकान है। अन्दर वह घरवालों के साथ रहता है। घर में बूढ़ी माँ और नववधू के सिवा कोई नहीं। बड़े दिनों में उसे घर जाने की छुट्टी मिलेगी, कप्तान ने उसकी दरख़्वास्त पर सिफ़ारिश कर दी है। इतने में एक गोली उसके सिर पर लगती है, और वह घड़ी भर तड़फ़ कर मर जाता है। मरते मरते वह हसरत भरी निगाहों से अपने संगी को देखता है और वह उसके मूक आह्वान को समझ जाता है। मरने वाले के हाथ में हाथ देते हुए आंद्रे यह सोचने के लिये विवश हो जाता है कि शर्वशक्तिमान् मृत्यु भी कैसी तुच्छ वस्तुओं में रहती है—लोहे के टुकड़ों में, ज़हरीले कीड़ों में। और जीवन कहाँ रहता है—एक हिचकी में, सांस के एक झटके में।

रात भीग रही थी, हवा में ठंड की काट बढ़ गयी थी। आंद्रे उठकर आगे चलने लगा। अब भी जीवन-पथ के कई थके हुए यात्री नदी के पास बैठे हुए वर्तमान के अंधकार में अतीत के प्रकाश

को घूर रहे थे। जब सवेरा होगा तो इन में से कई नदी की गोद में सोते होंगे। जीवन के झमेलों से उन्हें सदा के लिये छुटकारा मिल जायेगा। उनका मांस मछलियाँ खा जायेंगी और फिर इन मछलियों को मनुष्य निगल जायेंगे।

मकानों और दूकानों के दरवाज़े बन्द केवल खाने पीने और नाचने गाने के ठिकाने खुले हुए। उनके भीतर से हँसने बोलने की आवाज़ आती हुई। हँसी में उन्माद का अन्दाज़। आंद्रे एक कैफ़े में दाख़िल हुआ और कोने की एक मेज़ पर बैठ गया।

स्त्री-पुरुष सरसाम के बीमारों के समान कोलाहल मचा रहे थे। जैसे किसी जलप्रलय से बचने के लिये किसी टूटी नौका पर बैठ गये हों। उन्हें नहीं मालूम कि इस नौका को किनारा मिलेगा या नहीं। तब वे सोचते हैं कि आओ, कुछ ऐसा करें कि जीवन और मृत्यु की याद भूल जायें।

आंद्रे को हंगरी के उस गाँव की याद आयी जिसके चारों ओर वैरी ने आग लगा दी थी, और जब लोगों के लिये बचने का रास्ता न रहा तो वे सब एक जगह इकट्ठा हुए। शराब के पीपे खोल दिये गये, बाजों ने 'मृत्यु-गान' की दर्द-भरी तान छेड़ी। मतवाले हो कर लोग एक दूसरे से लिपट गये और जब आग उन्हें जलाने आयी तो किसी को उसकी परवाह न हुई।

सभ्यता और संस्कृति की पुकार कैसी ही गगनभेदी क्यों न हो, फिर भी आदमी वही दोरँगा 'आदम' है जो अदन के बाग़ में औरत और चारे की तलाश में रहता था। आदम और आदमी में हाथ और जीभ की चलत फिरत का अन्तर है और बस!

आँद्रे के आगे लड़ाई के मैदान का नक्शा फिर गया। सिपाही वहाँ कीचड़ से लथपथ खाई में जीते-मरते हैं। वही उनका घर और वही उनकी क़ब्र है। जब नगरवासी जाड़ों में कम्बलों और कोयलों की कमी का रोना रोते हैं, तो सैनिक आकाश तले, हिम भार से दबे हुए, उस तार पर खड़े रहते हैं जो जीवन और मृत्यु के बीच सीमा बनाता है। वे धर्म, राष्ट्र या देश के लिये लड़ने भेजे जाते हैं। और इन भारी-भरकम शब्दों का अर्थ केवल इतना होता है कि थोड़े से आदमियों की वासना की भट्टी में ईंधन पहुंचाया जा सके।

आँद्रे को आप ही आप हँसी आई, पर यह हँसी विष में बुझी हुई थी। बीयर के चौथे गिलास का अन्तिम घूंट पीते हुए उसने मन ही मन में कहा : और जब ऐसे लोग मर जाते हैं तो उनकी देह सड़ कर खाद बन जाती है। फिर इस खाद से अनाज उगता है जिसे आदमी और जानवर सभी खाते हैं।

जब वह बाहर निकला, तो उस पर विषाद का भारी बोझ था। उस निरपराध नवयुवक ने इसलिये जान दी थी और भविष्य में वह स्वयं भी इसलिये मारा जायेगा कि कैफ़े में बैठे हुए निठल्लों की 'मनोकामनाएँ' पूरी हो सकें। और इन कामनाओं का सार अच्छे खाने के बाद की एक डकार और संतोषपूर्ण ख़र्राटों के सिवा क्या है?

× × ×

दिन चढ़ चुका था, जब आंद्रे की आंख खुली। महीनों बाद वह ऐसी गहरी नींद सोया था। खिड़की का परदा खींच कर उसने बाहर देखा। नीले आकाश पर सूरज जगमगा रहा था और धूप जमी हुई बर्फ़ पर चांदी लुटा रही थी।

आँद्रे तैयार होकर उस पते पर चला जहां एक बूढ़ी माँ और उसकी जवान बहू अपने प्यारे की प्रतीक्षा कर रही थीं। उन जैसी कितनी औरतें अपने पुत्रों या पतियों की बाट दिन-रात ताका करती हैं।

आँद्रे उस घर के जितने समीप पहुंचता गया, उसके दिल की धड़कन उतनी ही तेज़ होती गयी। लड़ाई के मैदान में उसे कई बार जोखम का सामना करना पड़ा था। पर अब तक वह कभी इतना बेकल न हुआ था। सख्त सर्दी थी, फिर भी उसका माथा पसीने से भीगा हुआ था। रास्ते में एक जगह ठहर कर उसने शराब पी और सोचने लगा कि क्या यह अच्छा न होगा कि तार या डाक से शोक समाचार भेज कर पीछा छुड़ा ले। लेकिन उसकी जेब में ब्याह की अंगूठी है जो मरने वाले ने अपनी दुल्हन को लौटायी है और चाँदी के चौखटे में जड़ी हुई ईसा की तस्वीर है जो माँ ने अपने बेटे के साथ की थी। उन दुखियारियों को यह यादगारें भी तो लौटाना है। आँद्रे ने अपने बटुवे को खोल कर देखा और अचानक उसकी दृष्टि उस लोहे की ज़ंजीर पर पड़ी जो हर सिपाही की कलाई से बँधी होती थी। इस पर उसका नाम और उसकी फ़ौज का निशान खुदा होता था। जब कोई मर जाता, तो यह ज़ंजीर उसके घर भेज दी जाती थी। आँद्रे की जेब में मरने वाले की ज़ंजीर पड़ी हुई थी। तीनों चीज़ों को रूमाल में लपेट कर वह सोचने लगा कि किसी दूसरे की मौत का समाचार उसकी माँ को पहुँचाना अपनी मौत से भी अधिक कष्टदायक है। और उसे उन लोगों के जीवट पर आश्चर्य हुआ जो लाशों के पास बैठ कर सियापा गाते हैं। इस समय अपनी हालत का अन्दाज़ा लगा कर आँद्रे को

उन लोगों की सहानुभूति पर संदेह होने लगा। क्योंकि मौत का सन्नाटा हम सब को ख़ामोशी का सबक़ देता है।

अब उसे अपने साहस पर भरोसा न रहा। उसका रोष और तीखापन मोम बनकर बह गया। इन औरतों ने तो जीवन से कुछ अधिक नहीं माँगा था। दोनों का सहारा एक मर्द था जिसने जान-बूझ कर कभी किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा था। एक छोटी सी दूकान में वे तीनों अख़बार और किताबें बेचा करते थे। इतने में एक दिन उनके देश पर युद्ध के बादल घिर आते हैं। शत्रु-सेना का एक दूकानदार सिपाही दूर बैठ कर हवा में बन्दूक़ चलाता है। और उसकी गोली इस अभागे को मार डालती है। अब वह बूढ़ी किसके बिरते जियेगी? वह प्रेम-प्यासी दुल्हन किसका सहारा लेगी?

आँद्रे अपने भाग्य को सराहता है कि संसार में उसका कोई नहीं है। न वह किसी का है और न कोई उसका। जब संसार में शांति थी, तो यह जीवन कितना निरर्थक था। पर आज यह सब से बड़ा सौभाग्य है। कोई उसके मर जाने पर आँसू न बहायेगा। मरने से पहिले उसे यह पछतावा न होगा कि जीवन की अमुक धरोहर लौटा देना है—और यह परिस्थिति मृत्यु से कम शांतिदायिनी तो नहीं है।

वह दूकान में दाख़िल होता है। कोने में कुर्सी पर एक वृद्धा ऊनी मफ़लर बुन रही है। अन्दर के कमरे से बरतन धुलने की आवाज़ आ रही है। वहां शायद उसकी बहू है। आँद्रे अन्दर जा कर ठिठक जाता है। उसकी समझ में नहीं आता कि क्या कहे। वह अलमारी से किताबें निकाल कर देखने लगता है।

बूढ़ी अपनी जगह से उठती है और ग्राहक को सलाम करती है। "कैसा सुहावना प्रभात है। पर ईसा की मौत के दिन मौसिम बहुत उदास था...आप कैसी किताबें चाहते हैं? अगर मुझे धोखा नहीं हुआ तो आप मोर्चे से छुट्टी पर आये हैं। यही बात है ना? जी। तो फिर ऐसी किताबें पढ़िये जिनसे आत्मा को शाँति मिले। सान फ्रांसिस के उपदेश? रेनां का लिखा हुआ ईसा-चरित्र?"

बुढ़िया ख़ुश है। उसे विश्वास है कि उसका बेटा भी आजकल में आता होगा। किताबें निकाल कर मेज़ पर रखती हुई वह कहती जाती है: व्यापार बहुत मंदा पड़ गया है। नगर उजाड़ पड़ा है, बिक्री हो तो किस चीज़ की। हाँ, अख़बार अधिक बिक जाते हैं। लेकिन—इस 'लेकिन' के साथ उसका मुखड़ा उज्ज्वल भविष्य की कल्पना से दमक उठता है: "युद्ध के बाद मोरिस सारा काम संभाल लेगा। वह मेरा एकलौता बेटा है। काश आप जानते होते कि वह कितना समझदार और मेहनती है। आपने भला उसे कहाँ देखा होगा। ऊँचा डील भूरी नीली आँखें, सुनहरे बाल। वह भी आज कल में दस दिन की छुट्टी पर आने वाला है। मैं तो उसके लिये मफ़लर के सिवा कुछ न बुन सकी, पर उसकी दुल्हन ने—ओह, अगर आप उसके बनाये हुये स्वेटर और मोज़ों को देखें!"

आँद्रे का जी भर आया। बहुत दिनों के बाद उसकी आँख डबडबा आयीं। वह चुप यह सब सुनता रहा और पीठ फेर कर किसी अलमारी से किताबें निकालने लगा। भर्राई हुई आवाज़ में वह केवल इतना कह सका—

"इनके क्या दाम हुए?"

जब बुढ़िया नोट भुनाने के लिये संदूकचे की ओर गई, आँद्रे ने फ़ौरन जेब से वे तीनों चीज़ें निकाल कर मेज़ के कोने पर रख दीं। "ईश्वर आपकी रक्षा करे"—यह कह कर वह झट दूकान से बाहर निकल आया। वह लपकता हुआ पास की गली में इस तरह घुस गया जैसे बेसोचे समझे उससे घोर अपराध हो गया हो। पीछे मुड़ मुड़ कर देखते हुये वह अँधाधुन्ध भागता गया। उसका विवेक डरा कि कहीं यह असहाय स्त्रियाँ उसका दामन थाम कर यदि जीवन की भीख मांग बैठें तो वह क्या देगा।

आकाश का नीलापन निखर गया था; सूरज की कांति अधिक खिल गई थी। पर दिलों में अँधेरा था और अँधेरे में उदासी थी। हर घर से एक नीरव प्रार्थना, एक शब्दहीन विनय उठती और उस ओर देखती जहाँ मनुष्यों के झुण्ड सभ्यता के आदेश पर मरने-मारने के लिये जमा थे।

बच्चे आँद्रे की ओर उँगली उठा कर आपस में कुछ कहने लगे। शायद उनका मतलब यह था कि उनके बाप या भाई, इसी सैनिक के समान लड़ रहे हैं। सिपाही और लड़ाई के खेल वे आपस में रचाते हैं और ईर्ष्या से सोचते हैं कि हम छोटे न होते तो बड़ों की तरह सिपाही बन कर लड़ते। आँद्रे इस विचार से काँप गया कि नई पौद की सब से बड़ी अभिलाषा यह है कि एक दिन वह भी हिंसा और युद्ध को अपना लक्ष्य बनाये। पर माँए उसे देखकर पसीज जाती हैं और सहम कर आपस में कहती हैं कि बहुत दूर इसी युवक जैसे बेटे युद्ध-देवता की वेदी पर अपने प्राण होम रहे हैं। जवान औरतें उसे

ललचायी हुई चितवनों से ताकती हैं और उन्हें अपनी जवानी पर रोना आता है जो सूनी बीत रही है।

गलियों का सिलसिला एक पार्क के सामने जाकर समाप्त हो जाता है और आंद्रे थक कर एक बेञ्च पर बैठ जाता है। एक आध सप्ताह में वह रणक्षेत्र में होगा और फिर शायद उसे इतना अवकाश न मिले कि यों अकेला बैठ कर धरती और आकाश को इस निगाह से देख सके।

भरी दोपहर में गिरजा घर का घण्टा बज रहा है। बस इसलिये बज रहा है कि हमेशा से बजता आया है। बजानेवालों और सुनने वालों को कुछ नहीं मालूम कि इस नाद में आशा है या निराशा, हर्ष है या विषाद।

आंद्रे देर के बाद अपनी जगह से उठता है। उसे कहीं नहीं जाना है। उसे कुछ नहीं करना है। उसे सब कुछ भूल जाना है। जब जीवन का लक्ष्य मृत्यु के सिवा कुछ नहीं तो उसकी गुत्थियों को क्यों सुलझाया जाये, उसकी पहेलियों पर क्यों सिर खपाया जाये। चलते चलते वह गिरजा घर के सामने पहुँचता है और बेइरादा उसके अन्दर चला जाता है। हलका हलका सा अँधेरा, गहरी गहरी सी ख़ामोशी। आर्गन एक गम्भीर करुण राग बजा रहा है। यहाँ वहाँ इहलोक की मरुभूमि में परलोक की माया-मरीचिका ढूढ़ने वाले घुटने टेके या हाथ बाँधे खड़े थे। जगह जगह ईसा और मरियम की मूर्त्तियों के आगे मोमबत्तियां जल रही थीं। अगर और ऊद की सुगंधि से हवा बोझिल थी।

थोड़ी देर इस हवा को सूंघ कर आंद्रे की समझ में आया कि आदमी के लिये रणक्षेत्र से अधिक धर्मालय क्यों जानलेवा है। इसलिये कि यहाँ आदमी अपने वास्तविक व काल्पनिक शत्रुओं से लड़ता नहीं बल्कि उन्हें भूल जाने के लिये आता है। आदि काल से धर्म की अफ़ीम पिला कर अत्याचार मानवता पर नशतर चलाया करता है।

आंद्रे को इन दर्द के मारों पर दया आई। वे प्यासे हैं और जीवन की मरुभूमि में मारे मारे फिर रहे हैं। रूपहली रेत पर इन्हें पानी का धोखा हो जाये तो आश्चर्य ही क्या।

इतने में वह क्या देखता है कि वही बुढ़िया लाठी टेकते अन्दर आ रही है। उसकी बहू काली नक़ाब और काला लबादा ओढ़े हुए उसकी बाहों पर झुकी हुई है। दोनों निढाल हैं जैसे दो कोमल पौधों को पाला मार गया हो। दोनों कोने की एक मूर्त्ति के आगे जा कर खड़ी हो जाती हैं।

यकायक सारा गिरजा घर चीख़ पड़ता है, और इससे पहले की आंद्रे की समझ में कुछ आये, वह अपने को उस बूढ़ी के पास पाता है।

बूढ़ी की आंखों में आंसू नहीं हैं; उसकी ज़बान पर प्रार्थना नहीं है और न उसका मस्तक उपासना में नत है। उसने मरियम की मूर्त्ति के मुँह पर थूक दिया है और यह थूक ईश्वर की माँ के गालों पर बह रहा है। लुटी हुई मानवता की जननी ने ईश्वर की जननी को उसके सिंहासन से नीचे गिरा दिया है।

आंद्रे बूढ़ी माँ को एक हाथ से लिपटा लेता है और दूसरे हाथ में रूमाल लेकर मूर्त्ति का मुँह साफ़ करने लगता है।

पत्थर की मूर्त्ति

तालाब के किनारे ऊँचे से टीले पर शराबख़ाना था। घास-फूस की झोपड़ी जिसके अंदर लकड़ी के बेडौल पटरे टूटी-फूटी टाँगों पर खड़े हुए शराबियों का बोझ उठाते थे। और औंधी-सीधी मेज़ें जो चीड़ के सन्दूकों को काट-छाट कर बनायी गयी थीं। धुंवे से लिपी हुई दीवारों पर दीवट जिनमें शाम होते ही धुँधले दिये टिमटिमाने लगते थे। और एक कोने में कलवार की चौकी जो ताड़ी के मटकों और ठर्रे की बोतलों की ढेरी में अपने काले कलूटे शरीर के साथ यों घुल-मिल जाती थी जैसे सिरके का बहुत बड़ा पीपा हो। शराबख़ाने के दरवाज़े पर एक जवान औरत बैठी अंगारों पर कबाब भूना करती थी। और आग की आँच में उसका तमतमाया हुआ चेहरा दूर से बड़ा भला लगता था।

दिन भर शराबख़ाने में सन्नाटा रहता था। लेकिन शाम होते ही उसमें जीवन की लहर दौड़ने लगती थी। मिस्तरी, कसाई, बढ़ई और ऐसे ही लोग एक-एक दो-दो कर के जमा होने लगते। पहिले वह तालाब में हाथ मुँह धोते और कई तो बेझिझक उसके पानी में नंग-धड़ङ्ग नहाने लग जाते थे। जैसे दीवट के दिये जगमगाते और कबाब वाली हवा में अपनी महक फैलाती, शराबख़ाने में जान

सी पड़ जाती थी। बोतल के काग उछलते, मटके टकराते, कबाब की सीखें तिलमिलातीं, पीछे की कोठरी में कौड़ियाँ खनकतीं! दिन भर की थकन दम भर में काफ़ूर हो जाती और दिलों के दुख ठर्रे की बूंदों से धुल जाते थे।

उस रात को भट्टी मे बड़ी भीड़ थी। मवेशियों का बाज़ार अभी पूरी तरह भरने भी न पाया था कि हैज़े के डर से म्यूनिसिपल कमेटी ने उसे बन्द कर दिया। गूजर और ग्वाले हैज़े से ज़्यादा कमिटी को कोसते हुए औने-पौने सौदा चुका कर वापिस चले गये। मगर शहर के कसाई और गड़रिये कौड़ियों के मोल बकरी-भेड़ ख़रीद कर जशन मनाने शराबख़ाने में आ जमा हुए।

गड़रियों के चौधरी नामी ने हर आदमी को ठर्रे का एक एक अद्धा भेट किया और कबाब वाली को गोद में खींच कर कहा: "अरी, आज तो मैं तुझे भून कर खा जाऊँगा।"

चम्पा ने ललचायी हुई चितवनों से नामी के शलूके की जेब को ताका जिसकी सीवन रुपयों के बोझ से उधड़ रही थी, पर कलवार के डर से उसे कुछ भी कहने का हियाव न हुआ।

पता नहीं, राजू धोबी कब से दरवाज़े की ओट में खड़ा यह तमाशा देख रहा था। हफ़्तों से उसकी यह हालत थी। कलवार का ऋण चुकाने की उसमें सकत न थी और भट्टी में उसका आना जाना बिलकुल बन्द था। बेचारा राजू रात के अँधेरे में आता, बाहिर खड़ा कबाब और शराब की महक सूंघता और मन मारे उलटे पाँव लौट जाता। पर आज नामी की उदारता ने उसे सहारा दिया, और ठीक उस समय जब नामी के आदेश पर उपस्थित सज्जनों के खाली

कुल्हड़ दोबारा भरे जा रहे थे, राजू अन्दर घुस आया। तीर की तरह वह चौधरी नामी के सामने आया और हाथ जोड़ कर बोला: "चौधरी, आज तो मुझ दुखिया पर भी दया हो जाये।"

आज नामी का रोआँ-रोआँ सहानुभूति में शराबोर था। मवेशियों के बाज़ार में उसने ऐसा सस्ता सौदा किया था कि हज़ार रुपये से कम लाभ की आशा न थी। फिर यह राजू लाख गया गुज़रा सही, फिर भी इसमें एक बड़ा गुण था। उसके गले में बड़ा रस था और जब वह गाता तो उसकी तान बादलों की ख़बर लाती थी। सुनने वालों का बयान था कि कई बार साँप उसके गाने पर सर धुनते पाये गये। और यह तो सब जानते थे कि राजू के गले से आवाज़ निकलते ही तालाब के मेंडकों का कोरस बिल्कुल बन्द हो जाता था।

इसलिये, कलवार के प्रतिवाद की परवाह न कर के नामी ने आज की रात राजू को आश्रय देने का निश्चय कर लिया। अपनी गिरी हुई मूछों को ताव देने की बेकार कोशिश करते हुए उसने रईसाना शान से कहा: "राजू, आवो, भले बिराजो। बोलो, क्या पियोगे? ताड़ी या ठर्रा?"

राजू ने एक साँस में ताड़ी की लबनी ख़तम कर दी, और देर तक बैठा होंठ चाटता रहा। कलवार, जो उसके करतूतों से जला जा रहा था, अब चुप न रह सका और पुकार उठा: "बड़ा चार सौ बीस है यह राजू। काम न धाम, न गाँठ में दाम। दिन भर मदकख़ानों में पड़ा मदकियों को कहानियां सुनाता और मुफ़्त मदक पीता है। रात को यहाँ दारू की टोह में आता है। मैंने तो इसका आना-जाना बन्द कर दिया है।"

राजू के पड़ोसी रुस्तम कसाई ने इस अभियोग का समर्थन किया : "अजी बड़ा अपाहिज है यह राजू। ऐसा निखट्टू तो कभी देखने में नहीं आया। इसकी बूढ़ी माँ सवेरे से शाम तक घर-घर पानी ढोती है, चक्की पीसती है और इसे रोटी खिलाती है। मगर यह साला साँड बना यहाँ-वहाँ की सैर करता फिरता है।"

सब ने, यहाँ तक कि नामी ने भी राजू को ग़ुस्से से घूरना शुरू किया पर उस निर्लज्ज के माथे पर बल तक न आया। अपनी भीगी हुई मूछों को जीभ की नोक से चाटते हुए वह मुसकरा कर बोला : "भाइयो, रामजी की मरजी यही है कि कुछ काम करें और कुछ बैठे खायें। यह साधू—महंत और लाला-बनिये कौन सा पहाड़ तोड़ देते हैं। फिर भी हलवा-पूरी के सिवा किसी चीज़ को हाथ नहीं लगाते। तो फिर मैंने कौन सा पाप किया है ?"

संभव है कि बात बढ़ जाती, पर उसी पल दरवाज़ा अपनी चूल पर चरमराया और पंचम मिस्तरी की शकल नज़र आई। अब तो शराबख़ाने ने नयी करवट बदली। क्योंकि पंचम बूढ़ा हुआ करे फिर भी गाने में राजू का मुकाबला उसके सिवा कोई न कर सकता था। लोग उस दिन की प्रतीक्षा करते थे जब यह दोनों मिल बैठें! ऐसे संगत-सुख का अवसर कम ही मिलता था।

पंचम की आवभगत में हर तरफ़ से नारे बुलंद हुए। बल्कि राजू ने भी अपने टूटे हुए स्टूल पर उछल कर पुकारा : "उस्ताद, बहुत दिनों बाद पकड़ में आये।"

पंचम ने अपनी कमज़ोर आँखों पर हाथ की छाया कर के उसे निहारा और जब पहिचाना तो मुस्कुरा कर बोला : "ठहर जा लुच्चे,

आज मैं तेरी पोल खोल कर रहूँगा। अरे, तू न ताल का, न सुर का, चला है मुझ से बातें बनाने !"

किसी ने टोक कर कहा, "मिस्तरी, यह न कहो। राजू जो भी सही, है भूरे ख़ाँ उस्ताद का सिखाया हुआ।"

पञ्चम के गले का घूंट वहीं अटक गया : "एँ, तुम जैसे नौसिखिये भी मेरे मुँह आने लगे। आख़िर इस भूरे ख़ाँ को ही क्या आता था ? ठुमरी के सिवा वह गा भी क्या सकता था ? और उसकी आवाज़—"पंचम ने नाक-भौं चढ़ा कर छत की तरफ़ देखा : "उसकी आवाज़ कोमल से ऊपर चढ़ते ही बाँस की तरह फट जाती थी। पञ्चम सुर में तो एक पञ्चम मिस्तरी ही गा सकता है !"

तुलसी पनवाड़ी ने बात में बात मिलायी: "क्यों न हो, पार्वती देवी की देन है मिस्तरी को !" पर राजू के किसी समर्थक ने बीच में कह दिया : "अजी, उस देवी में भी कोई गुण है। पत्थर की मूरत, न मिस्तरी के काम की और न किसी के काम की।"

पञ्चम उस ढीठ को मार ही बैठता, वह तो कहो नामी चौधरी ने बीच-बचाव कर दिया। उसने राजू को डाँटा : "क्या तुझे मैंने रङ्ग में भङ्ग डालने के लिये बुलाया है ?"

अब तो राजू को भी जोश आ गया : "चम्पा, निकालना तो तबले की जोड़ी !"

नामी ने ललकार लगायी : "पिला दो सब को एक एक अद्धा। किसी ने तबले को थाप दी, राजू ने मल्हार का अलाप खींचा और कलवार अपनी शिकायत को भूलकर चिल्लाया : "अरी, देखती क्या है, बांध ले घुंघरू।"

बादल बरस कर खुल चुके थे और हवा में मिट्टी की सोंधी-सोंधी सुगन्ध बसी हुई थी, वातावरण में एक मस्ती सी थी और आकाश ऐसा निखर गया था कि धरती से तारों की सङ्केत-वाणी साफ़ सुनी जाती थी। राजू के गले से राग के बोल निकले, सुर गोया हवाई सीढ़ियों पर चढ़ते गए, चढ़ते गये—और बादलों की ओर जाकर ग़ायब हो गये। फिर एकाएक वह बिजली की सी तेज़ी से नीचे झपटे और पास आकर चारों तरफ बिखर गए। मल्हार का स-र ग-म कभी कभी बादलों की तरह उमंड उमंड कर आता, कभी गरजता और कभी हौले-हौले बरस कर खुल जाता था। चम्पा अपने मैले हंगे के सिरे को एक हाथ में थामे और दूसरे से ओढ़नी का कोर मुंह पर डाले ज़मीन पर ठोकर लगाती, शराबी दिलों को घुंघरू की छुमाछुम पर नचाती इधर-उधर चक्कर काट रही थी।

और जब राजू चुप हुआ तो दम भर वैसा ही सन्नाटा रहा जैसा ज़ोर की बारिश के अचानक थम जाने पर होता है। फिर जब जादू टूटा तो हर समझदार और नासमझ का सिर वाह-वाह की धुन पर हिल रहा था। कलवार अपने भारी-भरकम शरीर को ज्यों-त्यों सम्हालता हुआ पास आया और एक पूरी बोतल राजू के मुंह से लगाकर बोला : "जीते रहो राजू, कमा खाओगे।"

अब पंचम मिस्तरी की बारी थी। उसने बिहाग के बोल निकाले थे कि सब सांस रोक कर चुप बैठ गये। जैसे इस देस की थकी-हारी मानवता की प्राचीन पीड़ा कराह उठी और वह लोग जिनका दैनिक जीवन गंदगी और बेदर्दी में सना हुआ था, आप ही आप किसी नामालूम दर्द के अहसास से रो उठे। राग घायल हिरन की तरह

तड़फा, कराहा, कभी ऊपर उछला और कभी नीचे गिरा। बूढ़े गवय्ये की हर तान एक हूक थी जो फाँस बन कर हर सुनने वाले के दिल में खटक उठी।

इसी तरह देर तक वह गाते रहे और सङ्गीत की मौज ने उनके दिलो के मैल को धो दिया। जब रात बहुत बीत गयी तो वह सब लड़खड़ाते, डगमगाते उठे और नामी चौधरी ने चम्पा की कमर में हाथ डाल कर गाना शुरू किया—

नदिया नाले बहा आयी कंगना !

सब ने आवाज़ मिलायी और चम्पा ने घुँघरू की ठोकर लगा कर इस हाव-भाव से सास-बहू के झगड़े का चित्र खींचा कि सब की तबीयत फड़क उठी—और नामी को तो चम्पा कबाब से भी ज़्यादा मज़ेदार मालूम हुई !

× × ×

पचम पैदायशी गवय्या था। इस शौक़ में वह दूर-दूर मारा फिरा। बरसो किसी गायक का हुक्का भरा, किसी उस्ताद के पाँव दबाये, किसी के लिये भंग घोंटी। जवानी में उसके गाने की ऐसी धूम मची कि पार्वती के मंदिर में वह नौकर रख लिया गया। इस इलाके का यह सब से बड़ा मंदिर था और राजे-रजवाड़ों ने उसकी रखवाली के लिये अच्छी खासी जागीर दे रखी थी। पंचम साँझ सवेरे मदिर जाता और भजन-कीर्तन गाते हुए कभी इस सुंदरी को घूरता, कभी उससे आँखें लड़ाता। जब उसने ज़्यादा हाथ पाँव निकाले तो पुजारी ने निकाल बाहिर किया। यों तो पुजारी खुद सदाचार का पुतला न था। बंजर औरतों की गोद भरने के गुर उसे

खूब याद थे। पर एक तो वह ठहरा ब्राह्मण और फिर मौरूसी पुजारी। चेले-चाटों को वह ताक-झाँक की इजाज़त कभी न देता था और मन्दिर के सेवकों को लंगोट के सच्चेपन का उपदेश दिया करता था।

पंचम को भी अपनी कला पर बड़ा घमंड था। मंदिर से निकाला मिलने के बाद उसने अपने घर पर पार्वती की मूर्ति बिठायी। एक अंधेरी सी कोठरी में उसने ताक पर देवी बिठलायी। उसे सेंदूर से लाल-गुलाल किया, चाँदी की आँखों से सजाया। हर रोज़ उस पर फूल चढ़ाता और घी के दिये उसके सामने जलाता। मुँह अँधेरे वह मूर्ति को नहलाता और दिया जले उसके सामने बैठ कर संगीत का अभ्यास करता था। पर न तो बस्ती के लोगों ने देवी का आदर-मान किया और न देवी ने उन्हें कोई वरदान दिया। इस बीच में कई बार चेचक, प्लेग और हैज़े का हमला हुआ पर पंचम की देवी अपने आसन पर गुम सुम बैठी रही। किसी की विनती पर उसने ध्यान न दिया। और तो और, पंचम की दरिद्रता पर भी उसे दया न आई। फिर एक दिन वह आया कि सब ने देवी के दर्शन बन्द कर दिये और पंचम तंग आ कर मोटर के कारख़ाने में मिस्तरी बन गया।

जो भी हो, देवी पर पंचम की श्रद्धा में कोई कमी न हुई, देवी की कोठरी टूट फूट गयी, दीवारों की सफ़ेदी झड़ गयी, छत की कमचियों को घुन खाने लगी, चांदी की आँखों की जोत मन्द पड़ गयी। अंत में पंचम के बाल-बच्चों ने भी मूर्त्ति के दर्शन बंद कर दिये। लेकिन पंचम की आस्था तनिक भी न घटी। हर रोज़ सवेरे

वह कुवें से पानी लाता और मूर्त्ति को नहलाता; हर शाम को टूटा हुआ सितार उठाता और एक दो गत उसे सुनाता। जब उसके पास घी या फूल के लिये पैसे न होते तो वह देवी के आगे फूट फूट कर रोता; "देवी, सब ने तुझे भुला दिया और तू ने भी मुझे भुला दिया। पर मैं तो तेरा पुजारी हूं, माँ! तू संसार की माता है। एक बार जाग जा और इन पापियों को दिखला दे कि असल पार्वती तू है; वह नहीं जो छैल-छबीली बनी बड़े मंदिर में बैठी पापों का तमाशा देखा करती है।"

और पंचम को महसूस होता कि पार्वती की आँखें अँधेरे में मुस्कुरा रही हैं।

× × ×

लोगों की याद में ऐसा हैज़ा पहिले कभी न आया था। अस्पताल बीमारों से, मरघट और कब्रिस्तान मुर्दों से अटे पड़े थे। कफ़नचोरों और गिधों की बन आई थी। कपड़े और लकड़ी के दाम चौगुने हो गये थे डाक्टर यमदूत के पीछे-पीछे फिरकी की तरह चक्कर लगा रहे थे, और बीमा कंपनियों के एजेंट अपने काग़ज़ात लेकर चंपत हो गये थे। घरों में और घरों के बाहिर बूढ़े और बच्चे क्या, अच्छे-अच्छे कड़ियल जवान मालूम नहीं कैसे बीमार हो हो कर घड़ी भर में मर जाते थे और उनकी लाशों को उठाने वाले भी न मिलते थे।

डाक्टरों और वैदों से मुँह मोड़ कर लोगों ने मंदिरों और दरगाहों का रास्ता पकड़ा। पार्वती के मंदिर में तो दिन रात आदमियों की भीड़ लगने लगी। वह सब प्रसाद का हलवा खाकर और बावली

का पानी पीकर समझते थे कि हैज़े से छुटकारा मिल गया। लेकिन एक दिन सब के देखते देखते पुजारी खुद हैज़े का शिकार हो गया। इसके बाद उसके चेलों में हैज़ा ऐसी तेज़ी से फैला कि भक्तों ने उधर का रास्ता चलना भी छोड़ दिया। थोड़ी ही मुद्दत में मंदिर के कलस पर उल्लू अपनी डरावनी आवाज़ में मौत का राग गाने लगे और उसके दालानों में चमगादड़ें पर फड़फड़ाने लगीं; डाक्टरों, पीरों और पुजारियों से निराश हो कर लोग अपने घरों में पड़े मौत की बाट जोहने लगे।

इतने में अफ़वाह उड़ी कि पंचम मिस्तरी की देवी जाग गयी है और हैज़े के कई बीमार उसके दर्शन से अच्छे हो गये हैं। पहिले तो किसी को इस चमत्कार पर विश्वास न हुआ। जब इतने बड़े मंदिर की देवी इस महामारी को रोक न सकी तो बूढ़े मिस्तरी के घर में पड़ी हुई पत्थर की मूर्त्ति में क्या सकत थी।

पर इसे संयोग कहिये या और कुछ, अफ़वाह निरी बेबुनियाद न थी। पंचम के मोहल्ले में अब तक हैज़े की आहट न सुनी गयी थी। अगर किसी को हैज़े का खटका हुआ तो पंचम ने देवी के दर्शन करा के और चुल्लू भर प्याज़ का पानी पिला कर उसे अच्छा कर दिया।

अब तो सारी बस्ती में पंचम की देवी का डंका बज गया। कोई तीस साल बाद पंचम मिस्तरी की मनोकामना पूरी हुई और बड़े मन्दिर पर उसकी मूर्ति को जीत हासिल हुई। भक्तों ने देखते देखते उसकी कोठरी को दुल्हन बना दिया। छत पर नई कड़ियां पड़ गयीं, दीवार पर सफ़ेदी हो गयी। मूर्ति की आँखों में सोना भर दिया

गया, सेंदूर के बदले उस पर चंदन का लेप चढ़ने लगा। डेवढ़ी पर रंग-बिरंगी भंडियाँ उड़ने लगीं और रात को उसके घर पर दीवाली सजने लगी। प्रातःकाल उसकी चौखट पर फूल-पत्तियों का पहाड़ खड़ा हो जाता था।

रात को अनगिनत दर्शक उसके घर के सामने जमा होते और पंचम के साथ झूम-झूम कर भजन गाया करते थे। बकरे के लहू से देवी रोज़ नहलायी जाती और जोश की हालत में कोई भक्त तलवार की नोक जीभ के आर-पार कर लेता था, पर देखने वालों का बयान है कि उसे ज़रा भी चोट न आती थी। वह भीड़-भाड़ और धूम-धाम होती कि कहा नहीं जा सकता। हर्षातिरेक से देवी के पाँव चूम कर पंचम चिल्ला पड़ता—"संसार की माता, तू ने मुझ पापी की पुकार सुन ली। जिन्हें तुझ पर भरोसा न हो उन्हें मौत के मुँह में झोंक, पर जो तेरी डेवढ़ी पर आये हैं, उन्हें जीवन की भीख दे।"

थोड़े ही दिनों में पंचम सारे शहर का पुजारी बन गया। जनता की दर्शन-प्यास बुझाने के लिये उसने मूर्त्ति को अँधेरी कोठरी से निकाल कर बरामदे में चंदन-चौकी पर बिठाया। उजाले में आ कर देवी का मुखड़ा तेज से जगमगा उठा। शहर के ब्राह्मण दूर से देवी को नमस्कार करके मन ही मन पंचम की लोकप्रियता पर कुढ़ने लगे।

अब पंचम को अपने जीवन की सब से बड़ी अभिलाषा पूरी होती हुई दिखाई दी। बचपन से वह देखता आया था कि सावन की पूर्णमासी को बड़े मंदिर की देवी रथ-यात्रा करती है। बहुत बड़े रथ पर वह सजा-बना कर बिठलायी जाती है और सैकड़ों आदमी

इस रथ को काँधों पर उठाये गली-कूचों में फिरते हैं। ढोल, मंजीरे और शहनाई के परे के परे साथ होते हैं और सारी बस्ती की रंडियाँ रथ के आगे नाचती चलती हैं। घंटे और शंख के नाद से हवा थर्रा उठती है। दूर-दूर से लोग दर्शन को आते हैं और ऐसा जुलूस साल भर में कभी नहीं निकलता।

इस जुलूस को देखने के बाद पंचम अपनी देवी के पास आता और रो रो कर गिडगिड़ाता : "माँ, मेरी एक कामना पूरी कर दे। तुझे मैं ऐसे ही रथ पर बिठलाऊँ और तेरी यात्रा ऐसी हो कि लोग युग-युग याद करें"

कितनी मुद्दत बाद उसका अरमान पूरा हुआ। नगरवासियों ने पंचम का कहा कान लगा कर सुना। और जब सावन की चौदहवीं आई तो उन्होंने बड़े मंदिर के भंडार को खोला। उसमें से रथ, अंबारी और दमामे निकाले। पंचम की देवी के लिये बनियों ने मख़मल और कमख़्वाब के लिबास दिये। धीरजसिंह जमींदार ने अपने दोनो हाथी यात्रा की शोभा के लिये भेजे। उन पर बड़े बड़े नगाड़े रखे गये और पीछे घोड़ों पर सेवासमिति के वालेंटियर शंख बजाते हुए नज़र आये। बैंडवालों ने भी अपनी सेवा अर्पण की और फटी-पुरानी वर्दियों को झाड़ कर भाँति भाँति के बाजों के साथ जुलूस में शामिल हुए। छज्जों पर औरतें आरती की थालियां लिये जमा हुईं और सड़कों के दायें-बायें हज़ारों बच्चे बूढ़े आ खड़े हुये। रथ के रुपहले कलस धूप में जगमगाने लगे और सैकड़ों हाँफते-काँखते आदमी उसे काँधे पर लादे खींचने लगे। रथ के अंदर ढोल-मंजीरों के शोर से कान के परदे

फटे जा रहे थे और बीच बीच में उनकी आवाज़ को दबा कर पीतल के वज़नी घण्टे बड़ी शान से बज उठते थे। रथ के भीतर देवी के ठीक सामने आसन जमाये सुध-बुध बिसारे पंचम मिस्तरी गा रहा था। पार्वती की मूर्त्ति फूलों की ढेरी में छिपी हुई थी। केवल उसकी सुनहली आंखें धूप में अंगारों की तरह चमक रही थीं। उसके आगे जो लाल चादर बिछी हुई थी वह रुपयों और छोटे मोटे गहनों से लद गई थी। छज्जों से लगातार पुष्प-वर्षा हो रही थी और जयजयकार के नारों से आकाश गूँज रहा था।

यह पंचम के जीवन का सब से बड़ा दिन था। उसका चेहरा ख़ुशी के मारे दमक रहा था, आवाज़ जोश के मारे भर्रा रही थी, गाल हर्ष के आँसुओं से भीगे हुए थे। उसके पास राजू धोबी बैठा दोनो हाथों से चढ़ावे के रुपये पैसों को बटोर रहा था। कभी वह चांदी के बिछुवों को हाथों में तौलता, कभी सोने के छल्लों के दाम आंकता। फिर बीच बीच में देवी के आगे शीश नवा कर कोई नया राग छेड़ देता था।

रथ चीटियो की चाल चलता हुआ बड़े मन्दिर के सामने पहुँचा और एकाएक 'पार्वती की जय' के गगनभेदी नारे से उसके सुनसान दरोदालान गूँज उठे। ढोल, मंजीरों और घण्टों का तुमुल नाद हवा को कंपाने लगा। राजू धोबी के इशारे पर हर तरफ़ मशालें सुलग उठीं और गैस के लैंप जगमगाने लगे।

बड़े मंदिर को तो जैसे सांप सूंघ गया था। लोग कह रहे थे कि चोरों ने देवी के गहने चुरा कर मूर्त्ति को बावली में फेंक दिया

है। किसी ने उधर आंख उठा कर भी न देखा। बल्कि एक बिगड़े दिल ने सब को सुनाकर कहा कि पंचम की पार्वती को बड़े मंदिर में जगह मिलनी चाहिये।

पंचम इससे बड़ी सफलता और सुख का सपना भी न देख सकता था। वह गोया और किसी दुनिया में पहुँचा हुआ था। गौरी राग गाते-गाते उसे गुमान हो रहा था कि देवी सचमुच उसे देख-देख कर मुस्कुरा रही है।

अचानक वह त्योरा कर आसन से गिरा और मंजीरे उसके हाथ से नीचे ढुलक पड़े। हर तरफ़ सन्नाटा छा गया। बाजे बन्द हो गये. हाथी घोड़े खड़े हो गये, सब के जैसे पाला मार गया।

पंचम का शरीर लड़खड़ाया, उसमें ऐंठन हुई और फिर वह ठंडा हो गया। उसकी आंखें फटी की फटी रह गईं। और चेहरे का रंग बदलने लगा। उलटी उसके मुंह से निकल कर गरदन और छाती पर बहने लगी।

सहम कर सब लोग पीछे हट गये; कई के मुंह से चीख़ निकल गयी। रथवानों ने अपने कांधे अलग कर लिये।

पंचम का सिर हिला और उसने धीमी आवाज़ में कहा: "चुप क्यों हो गये राजू? गौरी राग गाओ भय्या! देवी को यह राग बहुत पसन्द है।"

और गौरी का स-र-ग-म विलाप बनकर आकाश की ओर उड़ा। वह ठुकराये हुए अरमानों की तरह बिलख-बिलख कर रोया। राग के बोल मेले में भटके हुये बच्चे की तरह मचल-मचल कर रोते रहे और किसी तरह चुप न हुए......!